मानव मन्दिर

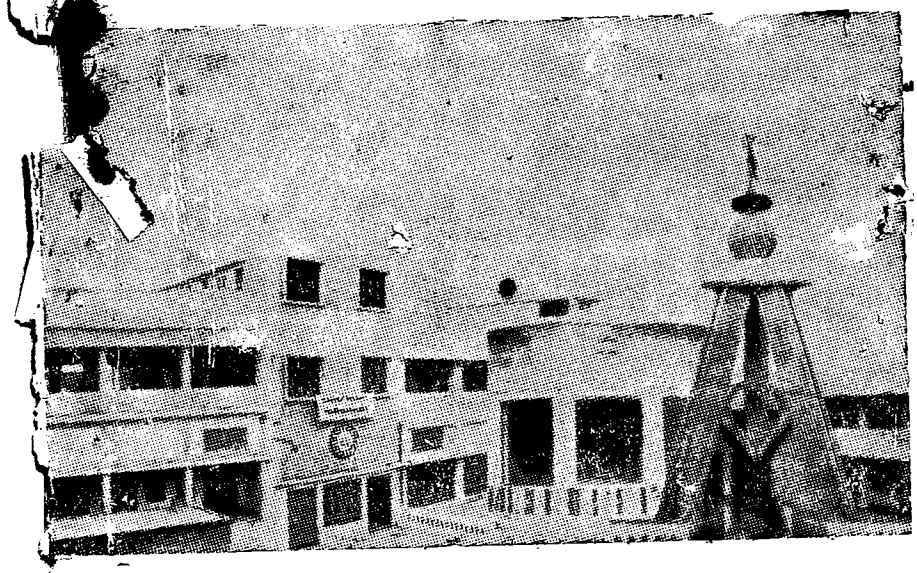

FORM A

(See Rule 8)

Place of Publication	Hoshiarpur.
Date of Publication	10th of every month
Periodicity of publication	Monthly
Printer's Name	Prem Prakash Sharma
Nationality	Indian
Address	Manavata Mandir, Hoshiarpur.
Editor's Name	Prem Prakash Sharma
Nationality	Indian
Address	Manavata Mandir, Sutehti Road Hoshiarpur.
Name and address of individuals, who own the Manav Mandir or partners or shareholders, holding more than one percent of the total	Faqir Library Charitable Trust, Hoshiarpur.

I, Prem Parkash Sharma hereby declare that the particulars given above are true to the best of my knowledge and belief.

Dated : 10

Signature of Publisher

Printed and Published by : Prem Praksh Sharma at Shiv Dev Rao Press Manavta Mandir, Hoshiarpur for the Faqir Library Charitable Trust, Hoshiarpur.

मानवता मन्दिर होशियारपुर में अगला मासिक सत्संग 18-6-95 को होगा

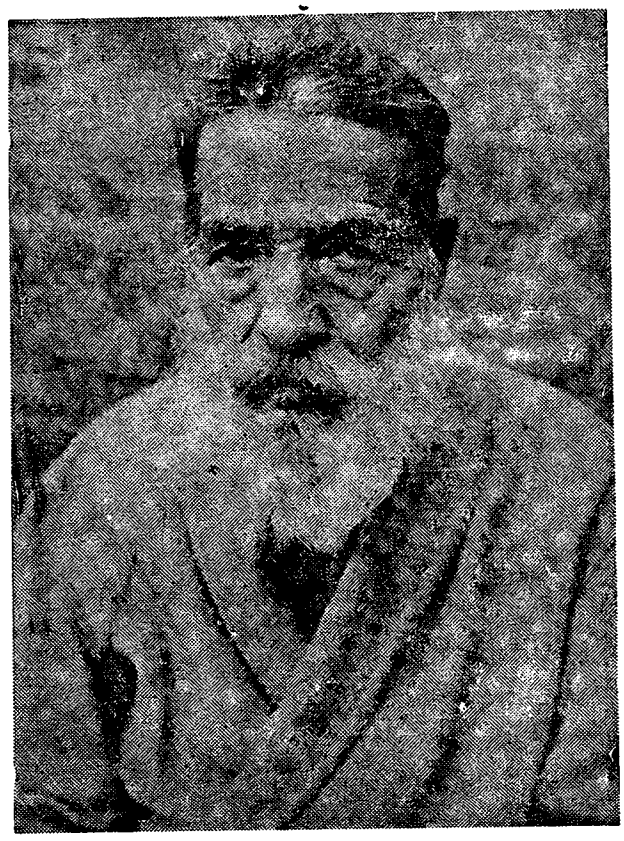

Param Sant Param Dayal
Pt. Faqir Chand Ji Maharaj

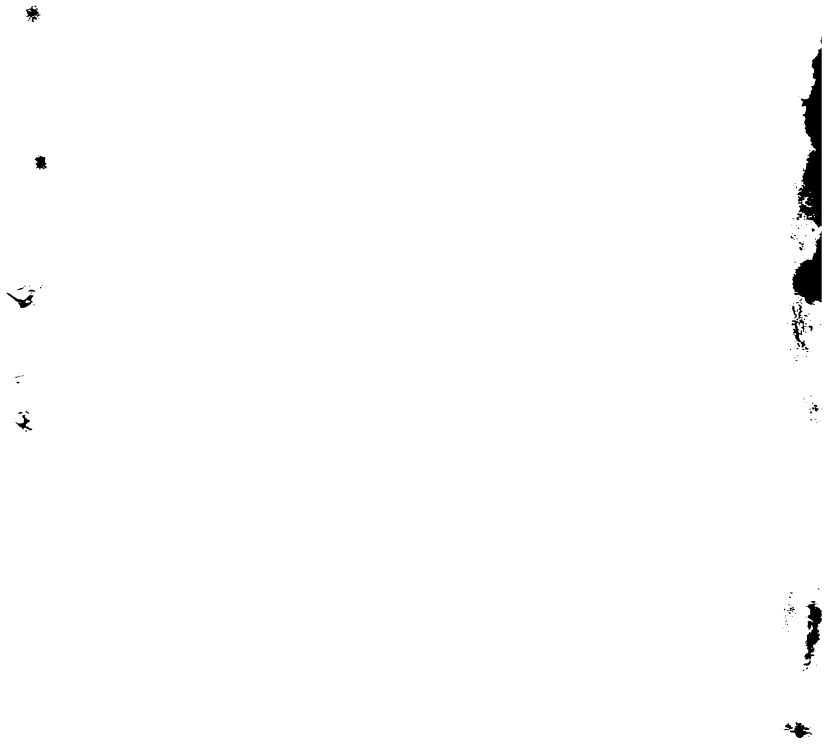

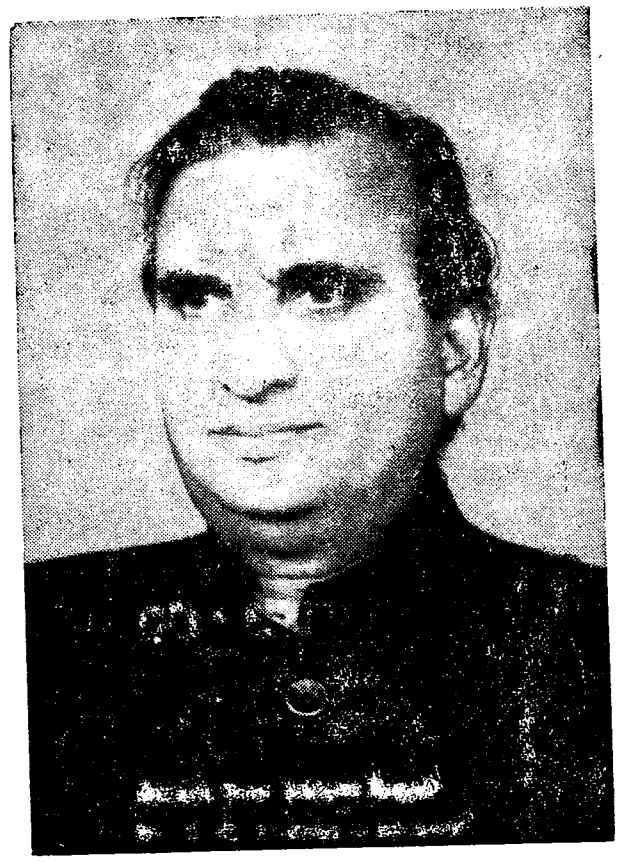

Param Sant Manav Dayal
Dr. I. C. Sharma Ji Maharaj

मासिक—

मानव मन्दिर

विश्व में मानव मात्र के सामाजिक, सांस्कृतिक
और आध्यात्मिक कल्याण और विकास की
सेवा में संलग्न मासिक पत्र।

सम्पादक :
श्री प्रेम प्रकाश शर्मा

वर्ष 23	शनीवार 10 जून, 1995	संख्या 2

सताईसवां सन्देश

अभ्यास के विषय में कुछ आवश्यक बातें

हजूर दाता दयाल महर्षि शिव ब्रत लाल जी महाराज

'सुमिरन' 'ध्यान', भजन ये तीनों अभ्यास के स्तम्भ हैं। प्रारम्भ में इनकी सुरतें अलग 2 होती हैं, परन्तु आगे चल कर वे एक हो जाती हैं। पहली ही श्रेणी में ही यह सम्भव है, किन्तु अन्त में तो तीनों शब्द रूप में ही हो जाती हैं जिसको प्रकाश कहा जाता है, वास्तव में वह भी शब्द के पेट से ही है और शब्द ही है और जब सुरत शब्द से मिल कर तद रूप, अर्थात् उस रूप की हो जाती है, तब खुछ करना धरना नहीं रहता। यह श्रेणी अन्तिम है और इस को सत राधास्वामी कहते हैं।

अभ्यास जैसे कि पहले कहा जा चुका है तीसरे तिल से

आरम्भ होता है, जो सुरत की बैठक है। बाकी नीचे के हिस्सों में तो उसका प्रतिबिम्ब (छाया) ही रहता है। सन्त प्रतिबिम्ब को समेटने को शिक्षा नहीं देते क्योंकि वे तो प्रतिबिम्ब मात्र ही हैं। हां जो स्थूल चित्तवृत्ति के हुआ करते हैं पहले उनको प्रागायाम की सहायता से मूलाधार से अभ्यास शुरू कराया जाता था और वे सहस्रार तक आते थे। अब चूंकि इस कलियुग में मनुष्य को बौद्धिक तथा मानसिक शक्ति उभरी हुई है, सन्त अपना समय व्यर्थ नष्ट नहीं करते। इसके अतिरिक्त आज क जमाने में प्राण योगी भी दिखाई नहीं देता। कुछ दिनों के अभ्यास से स्वयं समझ में आ जायेगा तो व्यक्ति सन्तों की शरण लेगा। कभी न कभी तो उसे प्राणायाम के साधन को ओर आना ही पड़ेगा, क्योंकि सुरत या आत्मा को चढ़ाई का और कोई सुगम और सरल साधन सृष्टि में नहीं है।

जिस समय अभ्यासी ने अभ्यास करना शुरू किया, उसको बड़े परिश्रम और दृढ़ता से काम करना चाहिए, ताकि वह शीघ्र ही प्रथम स्थान या श्रेणी का साक्षत्कार कर ले। जब उसको अपने ही अन्दर रस आने लगेगा, तो वह उससे कभी नहीं छूटेगा। अभ्यास ऐसी जगह किया जाये, जहाँ शोर व गुल न हो। अभ्यास करने का यथाशक्ति एक विशेष स्थान ही नीयत कर लेना चाहिए। जिस समय अभ्यासी उस जगह पर जाय, तो उसके मन में प्रेमभक्ति के अतिरिक्त दूसरे प्रकार के विचार मन में नहीं आयें क्योंकि फिर यह विचार जब उसमें अपना मन्डल बना लेंगे तो

उनमें प्रवेश करते ही उसके प्रभाव में आना ही पड़ेगा। प्रारम्भ में सावधानी की बहुत आवश्यकता होती है। कमरा साफ सुथरा रहे। सिवाय सतगुरु के और किसी की तस्वीर भी वहां नहीं रखनी चाहिए। व्यर्थ की कथायें न पढ़ी जाये, क्योंकि ऐसा करने से भिन्न भिन्न प्रकार के विचार के धारें फुरने लगती हैं जिस बात के पढ़ने से विचार में सनसनी पैदा हो उससे बचना चाहिए, क्योंकि वह चित्तवृति को एकाग्र न होने देगी। साधन का अभ्यास सुबह शाम कम से कम दो बार अवश्य करना चाहिए। अभ्यास भोजन करने से पहले करना चाहिए। मन को जितना अभ्यास में लगाया जायेगा, अभ्यासी को उतना ही लाभ होगा। गहरा अभ्यास करने से अभ्यासी की आदत ऐसी हो जाएगी कि वह जम घट में बैठा हुआ भी अपनी सुरत की धार को एक केन्द्र या स्थान पर एकाग्र कर लेगा और दुनियाँ की परेशानियां उसे परेशान नहीं करेंगी। अभ्यासी को भोजन भी कम खाना चाहिए। गोश्त और शराब से तो बिलकुल ही दूर रहना चाहिए। भोजन सादा और शीघ्र हजम होने वाला चाहिए। अधिक पौष्टिक भोजन भी नहीं खाना चाहिए

जिस आसन में बैठा जाय व वह कुक्कड आसन कहलाता है। यह पहले ही दिन अभ्यासी को बता दिया जाता है। इससे चित्त बहुत एकाग्र होता है। यदि इस आसन में बैठने से अभ्यासी को कष्ट होता है, तो जिसमें सहूलियत हो उस में बैठे। अभ्यास करते समय स्वयं सांस रुकने लगे और नस नाड़ी, हाथ और पांव शून्य होने लगें तब भी

अभ्यासी को चिन्ता नहीं करनी चाहिए और न ही उसको ओर ध्यान देना चाहिए। ध्यान हमेशा चढ़ाई की ओर देना चाहिए। अभ्यास करने में कुछ भय भी है। पहला अभ्यास करते समय कभी - कभी नींद भी आने लगती है। कोशिश करो कि नींद की दशा न आने पाये। यदि नींद आने लगे तो अभ्यास बन्द कर दो, थोड़ा चल फिर लो, उसके बाद फिर से अभ्यास में बैठो। सन्तमत निद्रा समाधि का निषेध करता है। यदि निद्रा पर काबू न पा सके तो अभ्यासी की उन्नति नहीं होगी शब्द या आवाज़ केवल वही सुनो, जिसको सुनने के लिए आपको बताया गया है शरीर में तरह २ के शब्द होते रहते हैं, उनमें से बहुत से नीचे की ओर ले जाते हैं, इसलिए धुन को छांट कर, उनकी ओर ध्यान दो।

अभ्यास के विषय में सारी बातें पहले ही गुरु द्वारा बता दी जाती हैं। गुरु द्वारा बताई गई बातों को ध्यान में रखना चाहिए। यहां हम कुछ बातें ऐसी बता रहे हैं, जो अभ्यासी को ध्यान रखनी चाहिए।

जिस समय अभ्यास किया जाता है, सुरत की चाल विशेष-२ केन्द्र या स्थान पर विशेष २ प्रकार की होती है। कहीं वह चींटी की चाल चलती है, 'पिपीलिका मार्ग' कहते हैं। कभी वह पक्षी की चाल उड़ती है, जिसको 'विहंग मार्ग' बोलते हैं। कभी वह बन्दर की तरह कूदती है, जिसे 'कपि मार्ग' कहते हैं। कोई स्थान ऐसा आता है

कि उसको अपने अन्दर से गुरु की शिक्षा के अनुसार, शब्द की धार पैदा करके, उस पर सवार हो कर विशेष स्थान तक पहुंचता होता है, जो मकड़ी की चाल कहलाती है। किसी स्थान पर शब्द गुप्त होते हैं।

ज्यों - 2 अभ्यास में उन्नति होगी त्यों -त्यों विचारों में दृढ़ता बढ़ती जायेगी, जिनको चढ़ाई का आधार नहीं मिला है और जिन्होंने ने अपने ही अन्दर साक्षात्कार नहीं किया, उनका भरोसा नहीं है। यह मार्ग बातें बनाने का नहीं, अपितु काम करने का है। जो करनी करेगा, उसके हाथ तो कुछ आयेगा। परन्तु जो करनी ही नहीं करेगा उसके हाथ क्या आयेगा? एक बार जिसने थोड़ी भी कमाई कर ली, उसके लिए आगे का रास्ता तय करना आसान हो जाता है और जो यों ही बातों में फंस कर इधर का उधर और उधर का इधर मारा 2 फिरता है, वह सफल नहीं होता। सत्पुरुष राधास्वामी दयाल फ़रमाते हैं :

यह करनी का भेद है,
नाहीं बुद्धि विचार।
कथनी छो. करनी करो,
तब पाओ कुछ सार॥

अट्ठईसवा सन्देश

सन्तमत की त्रिपुटी

दाता दयाल महर्षि शिव व्रत लाल जी महाराज

सन्तमत में तीन मुख्य बाते हैं, सतनाम, सतगुरु और सत्संग। इन्ही का सम्बन्ध सुमिरन, ध्यान और भजन से है। सुमिरन में सतनाम है। ध्यान में सतगुरु है। भजन में सत्संग है। जब तक इन तीनों से सम्बन्ध नहीं किया जाता, तो काम नहीं बनता।

नाम सत हो, गुरु सत हो सत संग हो तब लाभ होगा। यह त्रिपुटी ध्यान योग की प्रत्येक भाषा में मिलेगी, चाहे उसकी विधि कैसी हो क्यों न हो और जिस जगह इस शिक्षा

का प्रबन्ध होगा, उनकी आवश्यकता प्रतीत हुए बिना न रहेगी। इन तीनों के दो रूप है। एक बाहरी, दूसरा अन्तरीय। नाम बाहर भी है और अन्दर भी। गुरु बाहर भी है और अन्दर भी है। संग बाहर का भी होना चाहिए और अन्दर का भी। विशेषकर आरम्भ में तो बाहरी व्यवहार से सम्बन्ध रहता है। अगर उससे सम्बन्ध न जोड़ा जाय, तो अन्तरीय दशा की जानकारी भी नहीं हो सकती। इसलिए दोनों ही आवश्यक है।

नाम वास्तव में नियम है, जिसके सहारे ब्रह्माण्ड और सृष्टि का काम हो रहा है। जिसने नाम के साथ सम्बन्ध पैदा किया, वह एकता और अनुकूलता के रहस्य को समझ कर, जिस समय अन्तरीय या बाहरी जगत् से एकता कर लेगा, उससे शान्ति और आनन्द आयेगा। जो उससे बेसुध है वह आनन्द और शान्ति से वंचित रहेगा।

यह ज्ञान गुरु से मिलता है। बाहरी ज्ञान बाहरी गुरु से मिलता है। जब दृष्टि अन्दर की ओर गई, गुरु का असली रूप दृष्टि गोचर होगा और उनके शब्द स्वरूप में सुरत से एकाग्र होने से सत्संग का अन्तरीय उद्देश्य समझ में आयेगा।

सन्तों की आज्ञा है कि जब कभी दुनिया में सन्त प्रगट हों, जीवों को उनकी शरण में जाकर आत्म ज्ञान प्राप्त करना चाहिए, क्योंकि आत्म ज्ञान की असली शिक्षा केवल उसी समय प्राप्त होती है और वह ऐसे आदमियों के लिए प्रगट

होते हैं, जिनको असली ज्ञान की भूख होती है। वे ऐसे जिज्ञासुओं के केन्द्र होते हैं और ऐसे महान सन्तो की उन पर विशेष कृपा रहती है।

बाहरी सत्संग एक प्रकार की पाठशाला का काम करता है, जिसके अधिष्ठाता सन्त होते हैं। उनका संग सत्संग कहलाता है और उस सत्संग के प्रभाव से यों भी दिल में नाम की महिमा प्रगट होती है।

संगत का प्रभाव संसार में यों भी गहरा पड़ता है। यदि संसार के आदमियों की संगत इस तरह अपना प्रभाव पैदा करती है, तो फ़िर सन्तों के प्रभाव का क्या कहना है। यदि संयोग वश या सौभाग्या से प्राप्त हो जाय तो उसको बड़ी भारी सम्पति समझना चाहिए।

सन्तों की पहिचान के सम्बन्ध में कुछ आवश्यक बातें लिखी जा रही है, जिनको चित्त में रखने से लाभ होगा।

1) सन्तों का जीवन शुद्ध आत्मिक जीवन होता है, क्रियात्मक रूप से त्याग से स्वयं प्रगट होता है।

2) उनके वचनों में विशेष प्रकार का विद्युत प्रभाव होता है और वह अपने प्रभाव से रहित नहीं होते।

3) इनकी भाषा इतनी सरल, स्पष्ट और समय के अनुसार होती है कि उन्हें एक बच्चा भी समझ

सकता हैं। ऐच पेच नाम मात्र को भो नहीं होता। वो जो भी बात करते है वह स्पष्ट और सरल होती है।

4] इनके वचन सुनने से एक तरह की आत्मसता आती है। आत्मा का अपने अन्दर खिचाव होने लगता है।

जब वह घट का भेद सुनावे।
मन और सुरत गगन को धावें ॥
गर कुशायद ऊसरे अनवाने राजा।
जौ बसूये अर्श साजो तर्क का तार ॥

5) उनकी आंखें तेजवान तथा ललाट चौड़ा होता है।

साध का निरख आंख और माथा।
सब का नूर रहे जिस साथा ॥

6] वह मनुष्य का अधिकार देख कर शिक्षा देते हैं। जो जिस विचार का आदमी है उसको उसके विचार से समझा कर ही सन्त मत का श्रद्धालु बनाते हैं।

7) उनमें जात पात या रंग रूप का भेद नहीं होता। नीचे से नीची जाति का आदमी यदि वह अधिकारी है तो वह ऊंची जातियों वालों से भी ऊंचा है। इसके

विपरीत. यदि कोई ऊंची से ऊंची जाति वाला व्यक्ति उनको शरण में आता है और वह अधिकारी नहीं होता तो वे उसे ठुकरा देते है।

8] वे केवल मौखिक शिक्षा ही नहीं देते, किन्तु अन्तरीय रूप से आत्मिक सहायता दिया करते हैं। चाहे शिष्य गुरु से कितनी भी दूर क्यों न हो, यदि वह गुरु की शरण में एक बार आ गया है, गुरु उसकी सम्भाल इतनी दूर रह कर भी करता है।

9. प्राय: सच्चे अधिकारियों का काम बनाने के ख्याल से वह कभी 2 अपने में कोई न कोई ऐसी बात पैदा कर लेते है, जो संसार वालों को बुरी या घृणित लगे। मगर वे परमार्थियों का काम बनाती है।

पर यह बात बड़ी इतनी झोनी।
सन्त करावें निन्दा अपनी॥
निन्दा चौकीदार बिगई।
कोई जीव ध्वंसने नहीं पाई॥
बिरला जीव होय अनुरागी।
निन्दा से जो छिन्न भागी॥
निन्दा सुन 2 चित नहीं लावे।
सन्तन की वह जुगत कमावे॥

10 इनके सत्संग में बहुत प्रश्न करने की आवश्यकता

नहीं होती। इनकी बातों को ध्यान के साथ सुनने पर कुल संशय मिट जाते हैं।

11] वह कभी कभी अन्तरीय रूप से भी शिक्षा देते हैं।

सत्त पुरुष सम गुरु को जान।
बिन जिभ्या कहे वचन सुजान ॥

12) उनके यहां कर्मकांण्डीय ज्ञान का वर्णन नहीं होता, न वे तीर्थ व्रत, मन्दिर मसजिद में फंसाते हैं। केवल मनुष्य को अपने ही अन्दर भजन की विधि सिखाते हैं और मानव देह को ही मालिक का असली मन्दिर बताते हैं।

13) चूंकि सन्त परमार्थियों के ही लिए प्रगट होते हैं, इसलिए हर एक जाति, सम्प्रदाय के आदमी उनके पास स्वयं खिचे चले आते हैं और वे सब को एक समान उपदेश देते हैं।

सन्तों का कहना है कि जहां इस प्रकार की शिक्षा का क्रम दृष्टिगोचर हो। सच्चे जिज्ञासु को वहाँ जा कर अपना काम बनाना चाहिए और बहिर्मुखी लोगों की बातों पर नहीं जाना चाहिए, क्योंकि वे अकाज काम करने वाले होते हैं। वे असलियत को क्या समझेंगे। विद्वान तथा साधन सम्पन्न [सन्त] में अन्तर होता है। एक बातें बनाता है और दूसरा काम करता है।

यदि जिज्ञासु को अपने अन्दर परीक्षा करने की सामर्थ

नहीं हो, तो उसे गुरु से भी कोई लाभ नहीं होगा, केवल देखा देखी करने से लाभ नहीं होता, बल्कि हानि ही होती है। सन्तों ने स्पष्ट शब्दों में कहा है :

जो गुरु परख न पावै घट में।
मत तू जा अकेजा घट में।

जो गुरु को केवल मनुष्य ही समझ कर उससे सम्बन्ध जोड़ते हैं, तथा उनसे नाम लेते है तथा उनके शिष्य बनते हैं, वे धोखा खाते हैं।

कोई भी ऐसा शुभ कर्म नहीं हैं, जिसके करने से कोई न कोई फल न हो। सब से बढ़िया काम गुरु धारण करना है। बिना उसको भगत, सेवा और इष्ट के आध्यात्मिक लाभ बिल्कुल नहीं है।

तीरथ गये तो एक फल,
सत मिले फल चार।
सतगुरु मिले अनेक फल,
कहे कबीर विचार ॥

सत सनातन धर्म

अथवा

सत मानव धर्म

संस्कार

परमसन्त परमदयाल पण्डित

फकीर चन्द जी महाराज

गतांक से आगे

साधो यह मन है बड़ा ज़ालिम ।
जाको मन से काम परो है,
तिस ही होय है मालुम ॥
मन कारन जो उसकी छाया,
तिहि छाया में अटके ।
निरगुन सरगुन मन की बाजी,
खरे सयाने भटके ॥

मन हो चौदह लोक बनाया,
पाच तत्व गुन कीन्हे ।
तीन लोक माया वश चीन्हे,
परे न काहू लीन्हे ।।
जो कोऊ कहे हम मन को मारा,
जाके रूप न रेखा ।
छिन छिन में कितनों रंग लावे,
जे सपनेहु नहिं देखा ।।
रसातन इकइस ब्रह्माण्डा,
सब पर अदल चलावै ।
षट रस में भोगी मन राजा,
मो कैसे के पावै ।।
सबके ऊपर नाम निःक्षर,
तिहि लै मन को राखै ।
तब मन की गति जान परे यह,
सत कबीर मुख भाखै ।।

ऐ सत्संगियो ! जो मुझे गुरु मानते हैं मैं उतको गुरु मानता हूं । क्यों ? क्योंकि इस मन के रहस्य को समझने में आप लोगो ने मेरे साथ गुरु का काम किया है । गणेश [एक सत्सगी] पता नहीं यहां आया हुआ हो या नहीं, उसके अन्दर मेरा रूप प्रगट होता रहता है और प्रकाश में मेरा दर्शन करता रहता है । चूंकि मैं नहीं होता अत: में विबश हो गया हूं यह समझने के लिए कि मेरे अन्तर में जितने

मन के खेल होते थे, वह माया के खेल होते थे, जितने रूप या दृश्य दिखाई पड़ते थे, सिद्धि शक्तियां आती थीं वह मेरे लिए क्या सिद्ध हुई ? मन ही सिद्ध हुआ और तो कुछ नहीं हुआ ! मैं इस आवागमन से निकलना चाहता था। मेरा अपना मार्ग निर्वाण का है। मैं सन्तमत का अनुयायी हूं। चूंकि यह मेरे कर्म हैं पिछले जन्म के अथवा गुरु की आज्ञा है, इसलिए मैं इस लाइन पर आपको सत्संग कराता हूं अथवा आप लोगों की दया से मैं उस राम निरंजन को पकड़ गया जो मन, रंग, माया से परे है। यह संसार जो है इसको बनाने वाली माया है, वासना है। मैं वासना रहित पुरुष हूं वीतराग पुरुष हूं, मगर हो नहीं सकता था। जब मैं इस निर्वाण को प्राप्त करने के लिए अपने गुरु महाराज को बहुत तंग करता था तो उन्होंने मुझको यह खेल खिलाया था। उन्होंने यह काम दिया नाम दान देने और सत्संग कराने का और कहा था फकीर ! तू यह न समझना कि तू किसी का बेड़ा पार करेगा। तुझको सच्चे सतगुरु राधास्वामी दयाल के दर्शन सत्संगियों के रूप में हो जायेंगे, अब आप लोग गणेश आदि जितने हैं, के कारण मेरे यह संशय भ्रम मिट गए। जो मैं मन के चक्कों में आया हुआ था, उनसे निकला मगर संसार को इनसे निकलने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

तुम लोग यदि अपना लोक बनाना चाहते हो तो जो सनातन धर्म के सिद्धान्त या नियम हैं 'शिवसंकल्पमस्तु', अच्छे विचार' मन को उनमें लगाओ। मन को एक ओर अच्छे विचारों में लगाओ। सब की प्रकृति अलग अलग है।

कोई एक आदमी है उसका मन बड़ा चंचल है। तुम उसको लाख कहो तुम दो घण्टे बैठकर अभ्यास करो, वह नहीं कर सकता। उसका इलाज है उसको कर्म दो करने को। वह कर्म का अधिकारी है। जब वह कर्म करता हुआ निष्काम हो जाएगा, उसका मन शान्त हो जाएगा। यह एक ही तरीका या ढंग नहीं है कि सब के लिए एक ही रास्ता हो। इसको गुरु ही जानता है।

मैंने सत्संग शुरू किया था सनातन धर्म के विषय पर मैंने आपको दो सत्संगों में सनातन धर्म की संस्कृति बता दी कि इस दुनिया में सुख चाहते हो तो मा बाप अच्छी सन्तान पैदा करें। उनके जो संस्कार हों वह ठीक हों।

साइन्स ने सिद्ध किया है कि मनुष्य का शरीर एक रेडियो स्टेशन है। जो जैसा होता है उसके अन्तर से वैसी ही किरणें निकलती रहती हैं, वैसे ही भाव निकलते रहते हैं। जो आदमी उसके सम्पर्क में आएगा प्रेम के साथ, एक की धारें दूसरे में जायेंगी। गुरु का आचरण, गुरु के विचार शिष्य पर जाते हैं और शिष्य के आचरण गुरु पर आते है। आते कब हैं? जब प्रेम होता है। इसीलिए मैं किसी से प्रेम नहीं करता। मैं यहां आता हूं। जब यहा से जाता हूं तो साल साल भर तक दामोदर आदि का ख्याल मुझे नहीं आता कि यह है या नहीं। यदि मैं तुम लोगों का ख्याल अपने अन्दर रक्खू तो तुम्हारा ध्यान करूंगा या तुमको याद करूंगा तो तुम्हारे अन्दर जो अवगुण या गुण हैं वह मेरे अन्दर

आयेंगे। इसका अनुभव मुझे जीवन में कैसे हुआ, मैं जो बात कहता हूं वह थ्योरी नहीं किन्तु प्रैक्टीकल कहता हूं। 16 दिसम्बर 63 ई. को सुबह पाँच बजे मेरी स्त्री मर गई। बसरा बगदाद में भण्डारों [जो आचार्य हैं] के भाई का लड़का हेला स्टेशन पर नौकर था। उन्होंने मकान बदल था। जिस मकान में वह गए वहां लोगों ने कहा कि यहाँ भूत रहते हैं। उन्होंने कहा हम राधास्वामी है। हमें भूत क्या करेगा।' मगर दिल में चोर था। जब वहां पहुंच गए तो उसकी स्त्री अभ्यास में बैठ गई। उसके अन्तर में मेरा रूप प्रकट हुआ। मेरा रूप उसको कहता है कि मेरी स्त्री मर गई। उसने अपने पति राधापति से कहा। राधापति ने अपने बाप को हिन्दुस्तान में लिखा। यह घटना ठीक थी।

अब मैं अपने आप से पूछता हूं कि क्या तू उसे कहने के लिए गया था कि मेरी स्त्री मर गई। नहीं, मैं नहीं गया। चूंकि उसने सच्चे दिल से मेरा ध्यान किया और जब मैं उसके सामने आया तो मेरे अन्तर से यह विचार निकल रहा था कि मेरी स्त्री मर गई है तो इसका उसको ज्ञान हो गया। इसलिए सत्संगियो! लोग महात्मा समझ के मुझे पूजते हैं यद्यपि मैं महात्मा नहीं हूं, टोपधारी साहब हूं। मेरी सकल देखो तो वह महात्मा वाली है सही। इसलिए बजाय इसके कि तुम फकीरचन्द को याद करो, तुम अपने इष्ट को वह मानो जो परमतत्व, स का आधार, कुटस्थ है। मुझ याद करोगे तो यही करोगे कि जो कुछ मेरे अन्तर है मेरे ख्याल को ले लोगे, मैं मनुष्य हूं। इसलिए

कहा है :

गुरु को मानष जानते,
ते नर कहियें अन्ध ।
दुखो होंय संसार मैं,
आगे जम का फन्द ॥

गुरु किया है देह को,
सतगुरु चीन्हा नाहि ।
कहें कबीर ता दास को,
तीन ताप भर माहि ॥

इस नियमके अनुसार यदि मैं आपको प्यार करूं और प्यार मैं तभी करूंगा जब मुझे निजी स्वार्थ होगा, तो तुम्हारे विचार मुझ पर आते रहेंगे। इसलिए मैंने इस दौलत को लात मार दी। मैं यहां आया हूं। आप लोगों से धन लेने नहीं आया। भूल जाना इस बात क। यह तो मेरा कर्म है। अपना कर्म भोगता हूं। तुम पर कोई अहसान नहीं करता। अतः पहले अपना इष्ट बनाओ और उसे पूर्ण मानो।

आप को एक घटना सुनाता हूं। यह मैं मानता हूं कि एक मनुष्य चाहे तो अपने विचार की शक्ति को दूसरे तक पहुंचा सकता हैं। दूसरे के विचार की शक्ति आ सकती है। मेरे पास इतनी सिद्धि शक्तियां हुई है कि यदि मैं उनको

एक पुस्तक बनाता तो बड़ी भारी मोटी पुस्तक बन जाती मगर मैंने स्वीकार नहीं किया क्योंकि यह माया का मार्ग है। जो सिद्धि शक्ति में फंस गया, फंस गया। निकल नहीं सकता। मैं एक बार अपने घर से मानबता मन्दिर को आ रहा था। मेरा नौकर था जुगेन्द्र। वह रिक्शा चलाता था। उस समय रेल जालन्धर से आई थी। मैंने जुगेन्द्र से कहा कि इस गाड़ी में गन्ध आ रही है। कोई आदमी आ रहा है पेमी। पता नहीं कौन है। इसने कहा परसराम होगा। मैंने कहा परसराम नहीं है कोई और आदमी है। बात आई गई। मैं तो आ कर समाधि में चला गया। जब उठा तो सत्संग कराने लगा। वहाँ हंसराज घई [कानपुर वासी] आया हुआ था। वह सिर पर रखकर टेप रिकार्ड लेकर आया। इसके ख्याल की धार मेरे तक पहुंची। उस समय मैंने घई को कहा: घई! तुम बजाय मेरे याद करने के यदि उस मालिक को याद करो तो रेडियेशन के नियम के अनुसार तुम्हारे ख्याल की धार ऊंचे से ऊंचे लोक तक जा सकती है! इसलिए कहा :

दुखिया को न सताइये,
बुरी दुःखी की आह।
मुई खाल की सांस सों,
सार भसम हो जाय॥

तो तुम्हारे विचार में इतनी शक्ति है। आज मैं जा

रहा था। वहां एक कबीर पंथी का आश्रम था। वह गा रहे थे :

मालिक के दरबार में,
कमी बस्तु की नाहि ।
बन्दा मौज न पावई,
चूक चाकरी माहिं ।।

चाकरी करनी नहीं आती। सच्चे बनो। अकेले बैठो। मालिक से सच्चो पूकार किया करो। उसके हजार आंख हैं, हजार हाथ हैं। तुम्हारी पुकार ऊपर के लोकों तक जा सकती। यह रेडियेशन का नियम है। इसलिए आदेश है कि श्रेष्ठ महापुरुषों की संगत में बैठो। उनकी संगत से लाभ उठाओ। यदि मेरी संगत में बैठने वाले आदमी को बशर्ते कि पुत्र, धन मान लेने के लिए न आया हो, मेरी संगत में बैठने से मानसिक शान्ति (Peace of mind) नहीं मिलती तो मैं समझता हूं कि मेरे जीवन को धिक्कार है। वह स्त्री जो अपने पति को वश में नहीं कर सकती वह स्त्री फूहड़ है। मगर यदि वह नपुंसक है तब दूसरी बात है। अफसोस। मैं पूर्ण सन्त बन नहीं सका। मुझ में अभी 9-10 प्रतिशत कमी है कमजोरी है। मैं भी मनुष्य हूं। मैं गिरता रहता हूं मगर मैं कोशिश करता हूं कि अपने आपको सम अवस्था में रक्खु। मेरे इस कहने का सारांश यह कि हमारी संस्कृति क्या है? उसी पर आ रहा हूं।

अच्छी संतान पैदा करो। जो गुरु मत देने वाले हैं

अच्छी सतान पैदा करो, जो गुरु मत देने वाले हैं वह अच्छे होने चाहियें क्योंकि मानव शरीर रेडियो स्टेशन है। बच्चा जब पैदा होता है उसको कोई छूता नहीं है। जो व्यक्ति सबसे पहले उसको छूता है उसके जो प्रभाव होते हैं उसमें थोड़े बहुत जाते है। यह मेरी परीक्षा की हुई बातें है। मेरे पास एक कलर्क रहा करता था। उसके एक लड़की पैदा हुई। वह 12 दिन तक रोवे ही रोवे। वह मेरे पास आया। कहा बाबा जी! क्या करूं। मैं दुःखी हुं। सारी रात कुंडा खटकाता रहता हूं। यह लड़की जब से पैदा हुई है रोती ही रहती है। मैंने कहा कि पहले यह बताओ कि कहीं ऐसा तो नहीं है कि तेरी स्त्री लड़ाका सी हो, वह रोते रहा करती हो। उसको मनाने के लिए गया हो, तब भोग किया हो और गर्भ रह गया हो। या तो यह बात है या यह जिसने उसको सबसे पहले हाथ लगाया हो वह रोता होगा। वह चला गया दफतर में मेरे साथ गया। कहने लगा जो दाई आई थी वह मातम में बैठी हुई थी। जब आदमी बुलाने गया वह चला आई। वह रोती हुई आई क्योंकि जिसका जवान भाई मर जाय, तो बहिन को रोना ही है। उसके संस्कार उस लड़की पर पड़े। मैंने कहा इसका इलाज मैं कर देता हूं। मैंने फूल मंगवाये। राधास्वामी नाम लिया और उसको दे दिए। कहा उसको 24 घण्टे फूलों में रक्खो। वह ठीक हो गई। यह मेरा निज अनुभव है।

है यह जितना खेल है यह रेडियेशन का नियम है। इसका नाम सत्संग है। आज के सत्संग में

मैंने बहुत कुछ कहा है। सनातन धर्म की जय ! क्यों जय ? क्योंकि इसने हमको सच्ची शिक्षा दी। क्या शिक्षा दी ? यही कि अच्छी सन्तान पैदा करो। नामकरण संस्कार ठीक करो। अपने आचार व्यवहार ठीक करो। बच्चों को शारीरिक और मानसिक ब्रह्मचर्य की शिक्षा दो। सबसे अधिक उनकी संगत अच्छी रक्खो। सबसे बड़ी संगत तुम्हारी अपनी है वशर्ते कि घर में मां बाप शान्त रहते हैं। तुम देश के राजा के स्वभाव को बदल दो, गुरु का बतीरा [आचार बदल दो, घर के बूढ़े जो घर के चलाने वाले हैं उनको ठीक कर दो, दुनिया अपने आप ठीक हो जाएगी। आज के सत्संग में इतनी बातें प्रमाण दे दे कर आपको बता दीं। अब मैं तुम सबको तो छाती से लगा नहीं सकता। मेरा अंग वाणी है।

बाणी गुरु गुरु है वाणी,
बाणी अमृत सारे ।

इसलिए बचन सुनाता हूं, पुस्तकें लिखता हूं। मेरे बचन टेप रिकार्ड होते हैं लोगों के कल्याण के लिए। यहां बड़े बड़े महापुरुष बैठे हुए हैं। हो सकता है मैं गल्ती पर हूं। यह दावा करना कि जो कुछ मैं कहता हूं वही ठीक है यह मूर्खता का काम है। कुदरत के रहस्य का किसी को पता नहीं लगा। कबीर अपना अनुभव कह गया। कृष्ण अपना अनुभव कह गये। दातादयाल

[महर्षि शिव]अपना अनुभव कह गए। अपनी अपनी बोलियाँ बोलकर सब चले गए। मैंने जो समझा अपना कह चला मगर में इतना विश्वास कराना चाहता हूं कि मैंने जो कुछ कहा वह मैंने अपने क्रियात्मक जीवन में जो कुछ अनुभव किया, वह कहा। यदि गलती खाई हो तो क्षमा करना।

The donation to the Faqir Library Charitable Trust [Regd.) Sutehri Road, Hoshiarpur is exempted Under Section 80 G. of the Income-Tax Act 1961 vide the Commissioner Income-Tax Jalandhar Letter No. JUDL./TRUST/1-F/3264 Dated 19-7-94 upto year ending 31-3-1999.

सत्संग

परम सन्त सद्गुरु हिज़ होलीनैस
हज़ूर मानव दयाल

डा. ईश्वर चन्द्र शर्मा जी महाराज
मानवता मन्दिर होशियारपुर।

रविवार 13-3-88

❋

शब्द--1

सेवक की सेवा वश होकर,
स्वामी सेवक आप हुआ ।
उसका बोझ धरा सिर अपने,
कारज सब चुपचाप हुआ ॥
प्रेम भक्ति में सच्चा हो जा,
त्याग बुद्धि छल चतुराई ।

सहज ही मानुष जन्म सुफलहो,
छूटे जग अगमापाई ।।
ज्ञान पन्थ है खड्ग की धारा,
कट-कट गिरा जो पगधारा ।
भक्ति प्रेम में नहिं कठिनाई,
सहज ही जा भवजल पारा ।।
भक्त को माया नहीं सताती,
भक्त गुरु के हैं प्यारे ।
ज्ञानी नेमी करमी धरमी ।
भक्ति भाव से हैं न्यारे ?।
राधास्वामी नाम सुमर नित,
राधास्वामी गुन गा ले ।
शुभ अवसर पाया है साधो,
भक्ति रतन धन को पाले ।।

शब्द-2

गुरु रूप न समझे कोय,
भ्रम में पड़े अज्ञानी ।
गुरु को मानुष जान कर,
भक्ति का करें व्यवहार ।
सो प्राणी अति मूढ़ हैं,
कैसे जायें भव पार ।।
देह के बने अभिमानी ।।
गुरु को मानुष जान कर,
शीत प्रसादी ले ,

सो ता पशु समान है,
संशय में अटके ।।
गुरु तत्व न जानी ।।
गुरु को मानुष जान कर,
मानुष करे बिचार ।
सो नर मूढ़ गंवार हैं,
भूल रहे संसार ।।
मोह के फाँस फंसानी ।।
गुरु को मानुष जान कर,
भेड़ की चलते चाल ।
वह बन्धन को क्यों तजें,
व्यापे माया काल ।।
पड़े योनि की खानी ।।
गुरु नाम आदर्श का,
गुरु है मन का इष्ट ।
इष्ट आदर्श को न लखे,
समझो उसे कनिण्ठ ।।
बात बूझे मनमानी ।।
गुरु भाव घट में रहे,
अघट सुघट को खान ।
जिसे समझ ऐसो नहीं,
वह हैं मूढ़ समान ।।
नहीं गुरु रूप पिछानी ।।

चेला तो चित्त में रहे,
गुरु चित्त के आकास।
अपने में दानों लखे,
वहो गुरु का दास ॥
रहे गुरु पद घट खानी ॥
सूरत शिष्य गुरु शब्द है,
शब्द गुरु का रूप ।
शब्द गुरु की परख बिन,
डूबे भ्रम के कूप ॥
नर जन्म गंवानी ॥
गुरु ज्ञान का तत्व है,
गुरु ज्ञान का सार ।
गुरुमत्ता गुरु गम लखे,
फिर नहिं भव भय भार ।
कमल जैसी गति आनी ॥
राधास्वामी सद्गुरु संत ने,
कही बात समझाय ।
जो नहिं माने बचन को,
उरझ उरझ उरझाय ॥
कौन समझे यह बानी ॥

★ ★

गुरु देव जगद् व्याप्तं-ब्रह्मा-विष्णु शिवात्मकम् ।
गुरोः परतरं न हि किंचिवत् तस्मै श्री गुरवे नमः ॥
परमतत्वस्य अवतारम्, परमपूज्य सत्संगिनाम् ।
मानवस्य परमिष्टम्, फकीरं वन्दे जगद्गुरुम् ॥

राधास्वामी !

मेरे परम प्रिय आत्मस्वरूप सत्संगी भाइयो और बहिनों, आजके इस साप्ताहिक सत्संग मे दो शब्द पढ़े गए हैं। एक तो भक्ति भाव का है और दूसरा परा-भक्ति का। कई बार महाराज जी ने कहा है और मैंने भी कहा है कि सन्त मत कोई नया मत नहीं है, कोई नया धर्म नहीं है। सनातन धर्म में मालिक को ढूंढने की जितनी खोज हुई है, जितने योग ऋषियों और सन्तों ने अपनाये, और जितने अनुभव उन्होंने किए, उन सब का सार है सन्त मत, उन से कटा हुआ नहीं है। जब हम कहते हैं कि राधास्वामी मत सनातन धर्म के विकास की आशिरी कड़ी है, तो इसका मतलब यह नहीं है कि वह नीचे वालों कड़ियों से कट गयी है। जैसे वृक्ष होत है, उसकी जड़े होती हैं। उसका तना होता है, उसको शाखें होती हैं, उसके फूल और फल होते हैं, लेकिन कोई फूल या फल शाखों, तने और जड़ के बिना नहीं होता। अगर राधास्वामी मत को हम फल कहते हैं तो वह फल आकाश से नहीं गिरा। उसकी ऐतिहासिक जड़ें हैं, तना है, शाखायें है, तब वह फल है। अगर हम यह कहें कि यह बिल्कुल नयी चीज है, नया मत है, ईसका पुराणों से कोई सम्बन्ध नही हैं, भगवद्गीता से सम्बन्ध नहीं है, उपनिषदों

और वेदों से सम्बन्ध नहीं है, तो हम राधास्वामी मत को नहीं समझे। राधा और स्वामी दोनों शब्द हैं। राधा सुरत है और स्वामी शब्द है; दाता दयाल जी के इस शब्द में भी यही बात कही गयी है कि सुरत शिष्य है और शब्द गुरु का रूप हैं। कई तरीकों से यह बात समझाई गयी है। राधास्वामी मत उस दृष्टि से मत हैं कि यह अनुभव का एक साक्षात् नमूना है। स्वामी जी ने सुरत-शब्द की परिभाषा करते हुए पहले यह कहा :

'राधा आदि सुरत का नाम।
स्वामी आदि शब्द पहचान॥

और फिर कहा ;

'गुप्त रूप जहां धारिया,
राधास्वामी नाम।
बिना मेहर नहिं पावई,
यहा कोई विश्राम॥'

अब यहाँ पर राधास्वामी नाम आदि सुरत, आदि शब्द हैं। वही आदि धारा है, वह प्रकृति है और आदि शब्द पुरुष है। इसी से सारा जगत् बना। लेकिन जब राधा-स्वामी नहीं थे, जब प्रकृति-पुरुष नहीं थे, तब गुप्त रूप में वह था जिसको परम दयाल जी महाराज कहते है "वह है--है--है।" वह शब्द गुप्त था। वह जब प्रकट हुआ तब राधा-स्वामी अलग हो गए।

राधास्वामी अलग हो गए ।

'गुप्त रूप जहाँ धःरिया,
राधास्वामी नाम ।'

जब ये अलग हो गये तो उस गुप्त शब्द को, महाराज जी ने अनामी कहा है, उसको कोई भी बता नहीं सकता कि वह क्या है ! कोई उसे निर्गुण कहता है! कोई उसे सगुण कहता है। इस निर्गुण-सगुण के झगड़े में बुद्धिवादियों और वेदान्तियों ने सनातन धर्म को अलग अलग सम्प्रदायों में बाट दिया। लेकिन. गुप्त रूप जहां धारिया राधास्वामी नाम' जब वह राधास्वामी दोनों में प्रकट हुआ, तब उसको पाने का तरीका बुद्धि नहीं है, सोचने से नही है। सोचने से तो अद्वैतवादियों ने कहा कि आपकी हस्ती नहीं रहती,आप उसी मे मिल जाते हैं और विशिष्टाद्वैतवादियों ने कहा कि नहीं, आप भी रहोगे, और परमतत्व भी रहेगा। यानी आप उससे हमेशा अलग रहोगे। यह बुद्धि का झगड़ा इसलिए है कि उनको अनुभव नहीं हुआ। उन्होंने अनुभव करने की कोशिश नहीं की। इसलिए स्वामी जी ने कहा :--

'सुरत शब्द दोऊ अनुभव रूपा ।
तू तो पड़ा भरम के कूपा ॥'

और यह अनुभव है। यह साक्षात् धार है, यह बन जाना है। पहचाना भी नहीं, बल्कि बन जाना, हो जाना है। इसी को महाराज ने कहा है कि 'है, है, है। बन जाना ही अनुभव का होना है। अनुभव के बिना और कोई प्रमाण नहीं है उसके अस्तित्व का। जितने भी प्रमाण

बुद्धि के आधार पर दिए गए हैं, वे बुद्धि के खेल हैं, बुद्धि-विलास हैं। बुद्धि खेल खेलती है। बहुत से दार्शनिकों ने, शास्त्रकारों ने, और पश्चिम के बड़े-बड़े विचारकों ने कहा कि हमें प्रमाण मिलना चाहिए। दाता दयाल ने कहा :

'शब्द मिले, अनुमान मिले,
अनुमान के साथ प्रमाण मिले।'

लेकिन इस प्रमाण को समझाने के लिए भी कुछ ज्ञान चाहिए। प्रमाण मैं भी बहुत देता था। जब मैं पढ़ाता था तो जो भी बुद्धिवादी आते थे मेरे पास, या अब भी जब बुद्धि-वादी आते हैं, तो मैं उन्हें तर्क भी देता हूं। मैं दक्षण कोरिया में जाकर उस विषय पर बोला कि भौतिक या त्रिगुणात्मक जगत् के अन्दर हर चीज में कार्य-कारण सम्बन्ध है, जो कुछ घटित होता है उसका कारण होता है। इस कार्य-कारणता के सिद्धान्त के आधार पर सारा विज्ञान खड़ा हुआ है। विज्ञान कहता है कि हर एक घटना जो घटित होती है उसका कोई कारण अवश्य है' विज्ञान कहता है कि सारे जगत् के अन्दर गति है। पहली गति दूसरी गति का कारण होती है। लेकिन विज्ञान यह नहीं बता सकता कि पहली गति कैसे चली! इसी के आधा पर जो पश्चिम वाले प्रमाण मांगते हैं, या प्रमाण देते हैं वे भी पूरी तरह से किसी को सन्तुष्ट नहीं कर सकते। एक प्रमाण है जिसे कहते है अन्तिम कारण Finol cause)। अन्तिम कारण का सिद्धान्त यह है कि हर एक चीज जो दुनिया है, उसका कारण

है। यह जो सारा भौतिक जगत् है इसका कारण ठोस पदार्थ है। परमाणु जरें हैं। इस परमाणु का कारण यह है कि इसके अन्दर एक केन्द्र है जिसके चारों ओ इलेक्ट्रान् प्रोटान् परिक्रमा कर रहे हैं। पर यह इलेक्ट्रान् प्रोटान कहां से आए? इसका कोई जवाद नहीं देते! महाराज जी ने एक सत्सग में कहा है साईं सदानों के मुताबिक कास्मिक रे आतो हैं (ब्राह्माण्डी किरणें आती हैं।) लेकिन ब्रह्माण्डी किरण कहां से आई? यह नहीं बताते। अब कारण का कारण कारण। परमाणु का कारण ढूंढ़े तो उसके अन्दर इलेक्ट्रान-प्रोटान हैं और एक केन्द्र है। इलेक्ट्रान प्रोटान में आकर्षण-विकर्षण है। नफ़रत है, प्यार भी है। इलेक्टान प्रोटान जो चक्कर खा रहे हैं, एक केन्द्र उन्हें चक्कर खिला रहा है। सूर्य भी एक केन्द्र है, जिसके चारों ओर पृथ्वी, चन्द्र, मंगल, वृहस्पति, शुक्र, शनि आदि चक्कर खा रहे हैं।

गीता में भगवान कृष्ण ने कहा है, विज्ञान भी यही कह रहे हैं :—

'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति'
'भ्रामयन् सर्वभूतान'।

हर एक का केन्द्र बैठा हुआ है, और जगत का केन्द्र भी बैठा हुआ है। अपनी शक्ति से घुमा रहा है। वही ज्ञाता है --

गुप्त रूप जहा धारिया,

राधास्वामी नाम ।
बिना मेहर नाहिं पावई,
जहां कोई विश्राम ॥

अब उसने जो देह धारण किया है, उसे ढूंढने के लिए लाख कोशिशें कर रहे हैं। कारण का कारण का कारण का कारण का कारण। और जब उन्होंने परमाणु को तोड़ डाला, उसका नाश नहीं हुआ, क्योंकि जो 'हैपना' है, उसका नाश हो ही नहीं सकता। तुम्हारा हैपना जो है उसका कभी नाश नहीं हो सकता। तो परमाणु को कैसे तोड़ा? उसका केन्द्र हटा लिया। जब केन्द्र हट जाता है, तो गड़बड़ हो जाती है।

जब केन्द्र हटा तो आकर्षण-विकर्षण की शक्तियाँ आपस में टकराई और अणु-शक्ति तथा प्रकाश पैदा हुए। तो फिर परमाणु का कारण का कारण क्या हुआ? वह शक्ति--वह गति। अब वैज्ञानिक कहते हैं कि शक्ति की गति ही अंतिम कारण है, उसी को खुदा मान लिया, जो कुछ भी हैं वह आधार उस अंतिम कारण को वह मानते हैं खुदा। इसको कहते हैं कुचक्र। पहले अंडा पैदा हुआ कि मुर्गी पैदा हुई? पहले बीज पैदा हुआ कि वृक्ष हुआ? इसी चक्कर में पड़ गए। आखिर में शरणागत हो जाने से सब कुछ मिल जाता है। और प्रम ण सुना। और प्रमाण यह देते हैं कि ईश्वर शब्द--सर्वाधार है। ईश्वर का पूर्ण होना ही इस बात का प्रमाण है कि ईश्वर है। पूर्ण क्या? जिस से बड़ा और कोई नहीं, वह गुरु। 'गुरुदेव जगद् व्याप्तं।' ईश्वर वह है जिस से परे कोई और लोक नहीं यही धारणा कि

ईश्वर से बड़ो कोई चीज नहीं है, यह उसका प्रमाण है।

अब यों कहें कि अगर ईश्वर वह हैं जिस से परे कोई चीज नहीं हैं, तो जो कुछ भी गुण दुनिया के अन्दर हैं वे सभी ईश्वर में होंगे। अब गुणों में एक गुण है अस्तित्व का--होनेपने का। अगर अस्तित्व का गुण ईश्वर में है, तो प्रमाणित हो गया कि ईश्वर है। ऐसे ही बुद्धि की बात है, और उसको प्रसारित करते हुए एक पश्चिमी दार्शनिक ने कहा कि दुनिया में जो भी चीज होती है, उसका भी कारण होता है। जैसे मेरे मन में गाय का विचार हैं, तो गाय बाहर हैं न? गाय का विचार मन में तब हुआ जब गाय बाहर अस्तित्व रखती है। फिर वह कहता है कि हमारे मन में बहुत से विचार हैं, और उनमें एक विचार है कि ईश्वर पूर्ण है। तो यह विचार मेरे मन में कैसे आया मोटर है तभी तो मोटर का विचार आया! गाय है तभी तो गाय का विचार आया! तो ईश्वर की पूर्णता का विचार हमारे मन में कहां से आया? वह दार्शनिक तो ईसाई था। उसने कहा कि क्या यह विचार मुझे मेरे माता पिता ने दिया? कार्य है विचार और कारण है उसका आधार। गाय के विचार का कारण है गाय का होना। जो कारण होता है उसे कम से कम कार्य के बराबर तो होना चाहिए न! बल्कि कारण कार्य से बड़ा होना चाहिए। अब यह माइक्रोफोन लोहे का बना है, तो लोहा उसका कारण हुआ। लोहा इस माइक्रोफोन से ज्यादा है, कम नहीं है। कार्य से

कारण कम नहीं हो सकतां। लोहै से अलमारियाँ भी बनती हैं। सलाखें भी बनती हैं, और चीजें भी बनती हैं। तो कार्य से कारण कम नहीं हो सकता बल्कि बड़ा होता है। तो वह कहता है कि हमारे मन में ईश्वर की पूर्णता का विचार है। तो क्या यह विचार मेरे माता-पिता ने दिया? माता-पिता तो पूर्ण नहीं हैं। पूर्ण का कारण तो पूर्ण होना चाहिए, इसलिए यह विचार माता-पिता ने नहीं दिया। फिर वह कहता है कि मैंने खुद भी यह विचार पैदा नहीं किया। और अगर मेरे से यह विचार पैदा हुआ तो मैं भी पूर्ण नहीं हूं! इसलिए इस विचार का कारण न माता-पिता हैं, न मैं हूं, न बाहर है, बल्कि स्वयं खुदा है जो पूर्ण है और जिस ने मेरे मन में यह छाप लगा दी कि वह पूर्ण है। लेकिन इसका जवाब यह है कि हम खुद अपने आप में पूर्ण हैं। उस इस बात का पता नहीं था। इसका एक दूसरा तरीका और भी है कि जहां कोई व्यवस्था होती है, जहां सारी चीजें एक तरीके से रखी होती हैं, उसके पीछे उस अवस्था को बनाने वाला कोई न कोई व्यवस्थापक होता है! अब जैसे कि यहाँ ये किताबें बंधी हुई व्यवस्था में रखी हुई हैं, तो किसी व्यवस्थापक ने इन्हें यहां इस व्यवस्था में रखी होगी जो मन वाला और बुद्धि वाला होगा। यहां कोई व्यवस्था है, कोई क्रम है, यहां कोई (system) है जहां हर चीज एक तरीके से चलती है, उसके पीछे कोई न कोई मन बुद्धि रखने वाला व्यवस्थापक अवश्य होगा। सारी दुनिया के अन्दर ऐसी व्यवस्था है जिसे देख कर मनुष्य की बुद्धि चकित रह जाती है। इन्सान की व्यवस्था और सरकार तो फेल हो

हो जाती है, और हो रही है और अराजकता फैल जाती है। दफतरों में काम करने वाले बाबू देर से जाते हैं और चाय पी कर समय गुजार देते हैं। लेकिन क्या ये मंगल, बुध, बृहस्पति आदि नक्षत्र कभी चाय पीने जाते हैं? इस प्राकृतिक जगत् को व्यवस्था इतनी सुन्दर है, यह राधा इतनी सुन्दर है, एक नहीं बल्कि करोड़ों सर-मण्डल आकाश में हैं, अगर आप ऊपर जा कर देखें तो ये कितने सुन्दर दिखाई देते हैं। चन्द्रमा पर जाकर देखें कि पृथ्वी कितनी सुन्दर दिखाई देती है? इस सौन्दर्य और व्यवस्था को किसी ने बनाया होगा! इसके पीछे कोई व्यवस्थापक होगा या नहीं?

'यथा पिंडे, तथा ब्रह्मान्डे।'

जो नमूना आप प्रमाणु के अन्दर देखते हैं, बिल्कुल वही नमूना और मंडल में भी है। इलेक्ट्रान-प्रोटान की तरह मंगल, बध, वृहस्पति, शुक्र, शनि आदि सूर्य के केन्द्र के इर्द गिर्द चक्कर लगा रहे है। यह बिल्कुल एटम (परमाणु) का नमूना आप देख सकते है। क्या इसके पीछे कोई व्यवस्थापक नहीं है? है, और वह जो कुछ भी है, उसी को तुम परमसत्व मान लो। ऐसे तर्क दिए जाते है। लेकिन इन तर्कों को काट दिया जाता है। सब से अच्छा तर्क यह है कि तुम खुद उसको अपने अन्तर में अनुभव करो।

'सुरत-शब्द दोउ अनुभव' रूपा।'

परमतत्व भी तुम्हारे अन्दर है। शब्द भी तुम्हारे अ दर है, सुरत भी तुम्हारे अन्दर है जब तुम स्वयं अपने में अपनी सुरत को अपने शब्द में मिला दोगे, तो उस शब्द के परे आपको वह अवस्था मिलेगी, जहां उस प्रकाश को देखने और शब्द को सुनने वाले तत्व का आपको अनुभव हो जाएगा, तब आपको अभय दान मिल जायेगा और शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा की तरफ आपका ध्यान ही नहीं रहेगा। मालिक का प्रमाण स्वयं मालिक बन जाना है। और वह बन जाने का एक मात्र रास्ता है। प्रेम वह रास्ता है शरणागत का। इन सब तर्कों को देते-देते बुद्धिवादी क्या करते हैं आपस में टकराते हैं! अन्त में यही बात आती है कि वह परमतत्व है जरूर। इसलिए उसके सामने झुक जाओ।

'गुरदेव जगद्व्याप्त।'

मैंने इसकी व्याख्या करते हुए उनको बताया कि यह 'कार्य-कारणता' जो है, यह अधूरी है जब तक सुरत-शब्द योग के ज़रिये तुम उसे कारण के कारण, गति की गति की गति, स्थिति की स्थिति की स्थिति को नहीं पहचानोगे। और वह सिर्फ़ अनुभव है। यह सत्य मैंने वैज्ञानिकों के सामने उनकी ही भाषा में रखा। भौतिकी (physics) के अन्दर सब से आखिरी निष्कर्ष— जो आइंस्टाइन ने भी निकाला कि समय और देश--सारा जगत् सापेक्ष है, है कि नहीं, प्लंक ने बताया कि सबसे तेज गति प्रकाश की इस जगत के अन्दर है वह लहरों में नहीं चलती, बल्कि टुकड़ों में चलती है, और अनुभव यह बताता है कि प्रकाश कभी

लहरों में चलता है, कभी टुकड़ों में ! मैंने कहा; भाई यहां देख लो तुम, तुम्हें समझ में आ ही नहीं सकती। वह है सो है। उसका तो अनुभव ही करना पड़ेगा। यह जब मैंने महाराज जी की कृपा से उनके विचारों को वैज्ञानिक रूप से लिख कर बताया तो विज्ञान की जो गुत्थी थी कि पहली गति कहां से चली ? वह सुलझ गयी। विज्ञान और धर्म में कोई भेद नही है। इस बात को मैंने उनकी भाषा में लिखा। वह तो जो पढ़े वही खुद बता सकता है। मैं जब भारत आया तो भारत के सब से विख्यात साइसदां हैं डा. डी. एस. कोठारी, जो पद्मविभूषण है, और भौतिकी के अन्दर उनकी खोज विश्व-विख्यात है, वह मेरे मित्र हैं। मैं उनको मिलने जयपुर गया। मेरे साथ श्री के. पी. वर्मा जज भी थे। डा, कोठारी यूनिवर्सिटी ग्रांट्स कमीशन के चेयरमैन भी थे। करीब तीस साल पहले वे उदयपुर में हमारे कालेज मैं आए थे। तभी से वे मुझे जानते है। तो मैंने सोचा मैं उनसे यहां मिल लूं और अपना यह लेख उन्हें दिखला दूं कि कहीं मैंने विज्ञान की दृष्टि से कुछ गलत तो नहीं लिखा ! वे अपने पुत्र के यहां ठहरे हुए थे। वे बड़े ही विद्वान् है, मैं समझता हूं कि सन्त गति है उनकी इतना उच्च कोटि का विद्वान होने पर भी बहुत ही सरल स्वभाव के है। इन्दिरा गांधी ने स्वयं उनके घर जा कर उनसे प्रार्थना की थी कि वे नेहरू यूनिवर्सिटी के वाइस-चाँसलर का पद स्वीकार करें, और उन्होंने उनकी प्राथना स्वीकार की थी। हम जब उनके घर गए तो मैं तो सोफे पर बैठा, पर जज साहब श्री वर्मा जमीन पर बैठ गये। उन्होंने ऊपर बैठने को कहा फिर भी वह नीचे ही बैठे रहे तो वह भी नीचे

बैठ गए। खैर मैंने दोनों को ऊपर बैठाया। श्री वर्मा ने जब उन्हें बताया कि मैंने परमदयाल जी महाराज का काम सम्हाला है, तो वे अत्यन्त प्रसन्न हुए। वे कहने लगे मुझे इतनी खुशी हुई है कि अगर आपको हार्वर्ड यूनिवर्सिटी का चांसलर भी बना दिया जाता तो भी मुझे इतनी खुशी न होती, जितनी की अब हुई है। आप जैसे विद्वान प्रोफेसर और दार्शनिक जब यह सच्चाई बताने लगेंगे तो सब मानेंगे वे बड़े प्रभावित हुए। मैंने उन्हें महाराज की पुस्तक दी तो उन्होंने उसे मस्तक से लगाया। फिर मैंने उन्हें अपना लेख भी दिया। उन्होंने बाद में उसे पढ़ा तो उनका यह मतव्य है, हालांकि वे जैन हैं, पर सनातन धर्म को मानते हैं, उन्होंने कहा, 'आपने जो कुछ भी इस लेख में लिखा है, वह पूरी तरह वैज्ञानिक और सत्य है। इसमें कोई सन्देह की बात नहीं है।" यह तो सिर्फ अनुभव की बात है। पहले मैं खुद तर्क दिया करता था पर अब मैं समझता हूं कि यह तर्क अधूरे है। सच्चा तर्क सिर्फ वही है जो अनुभव में आ जाए। उसको खोज करते, करते, करते, करते, उससे प्यार करते, करते, उस अवस्था में पहुंच गया, अभयदान और अविनाशी तत्व का आभास हो गया। उसे ज्ञान नहीं कहता मैं, क्योंकि ज्ञान नीची चीज है, ज्ञान कहना उसकी तौहीन करना है। ज्ञान किसका? कौन ज्ञाता है? कौन ज्ञेय है? वहां तो ज्ञाता-ज्ञेय रहा ही नहीं। वह तो अनुभव है, और वह अनुभव एक झटके में आया। और उस झटके के बाद पूर्णतया अपने आप में आत्मविश्वास हो गया, अहंकार नहीं है। अहंकार मरा नहीं, बल्कि अहंकार,

सात्विक हो गया। यही महाराज कह रहे थे कि अहंकार नहा, क्रोध नहीं, वह एक ऐसी शक्ति में बदल गया जो सारे जगत् में फैल गयी, उस शक्ति का अंग बन गया।

काम ऐसे प्रेम में बदल गया जो विश्व-व्यापी हो गया। : क्योंकि तुम्हारा असली रूप क्या है ?

'रूप तेरा अति प्यारा फकीरा,
रूप तेरा अति प्यारा ।
(गुरु रूप न जाने कोय।)
तू सत् चित् आनन्द की मूरत,
तू तीनों से न्यारा।

आप सभी फकीर हो। अब आप देखो कि फकीर फकीर से कह रहा है। अहा हा ! दाता दयाल कह रहे हैं फकीर को ; अपने आपको ही कह रहे हैं, वही तो परम तत्व हैं ! कितना प्यार करते थे दाता उनको, और कितना महाराज जी उनको प्यार करते थे :

'रूप तेरा अति प्यारा'

किसी गुरु ने ऐसा कहा है अपने शिष्य को ? वही कह सकत है जो खुद बन गया। जो खुद हो गया परमतत्व, वही शिष्य में परमतत्व को देखेगा, और कोई कह नहीं सकता। जिसके अन्दर द्वैत भाव है कि में गुरु हूं और मेरे दस लाख चेले, बीस लाख चेले है, वह क्या कह

सकता है :—

'रूप तेरा अति प्यारा फकीरा।'

और वास्तव में प्यारा था कि नहीं! तुम देखो। उनका अंग अंग प्यारा था कि नहीं। आज तुम मालिश कर रहे थे) बताओ, उनका अंग, अंग व्यापक हो गया था।

'तू सत् चित् आनन्द की मूरत।'

शरीर, मन और आत्मा, यह आपका बाहरी रूप है। यह दिखावा है, प्रसार है, फैलाव है, यह शाखा-प्रशाखा-फल है। लेकिन उसका आला रूप, उसकी जड़ क्या है। इन तीनों से न्यारा है। वह न्यारापना तुम्हारे अन्दर है।

'तेरी गति-मति बुद्धि न जाने,
अटक रही मझधारा।'

यह महाराज जी की बुद्धि को नहीं कहा है, महाराज जी तो शरणागत हो गए थे। यह आपको बता रहे हैं कि आप भी वहीं हो। उसकी गति की गति की गति की गति। कहा है न!

'गुरोः परतरं नहि किञ्चित्।'

गुरु से परे और कोई चीज नहीं है। बुद्धि तो बहुत

नीचे रह जाती है। बुद्धि कैसे पहचाने उसको ? उसकी गति को, उसकी अवस्था को, उसके होनेपने को बुद्धि नहीं जान सकती। वह तो 'अटक रही मझधारा' बुद्धि तो बीच मे है, कभी कहती है 'मैं शरीर हूं' कभी कहती है 'मैं मन हूं।' यह उसके स्वरूप की व्याख्या नहीं कर सकती।

'कर्म किया सत् की चढ़ा घाटी,
चित् मैं विवेक विचारा।'

अब कर्मी धर्मी जो कर्म करते हैं, अच्छे कर्म करते है। कर्म योग पर चलते हैं, फिर सत को तरफ़ आ जाते है। कर्म सत् है न ! सत् को घाटी पर चढ़ा। और फिर विवेक हो गया कि यह सत् है, यह असत् है।

'सत् चित् आनन्द विलासा,
चहुं दिश हर्ष पसारा।'

हन सत्, चित्, आनन्द तीनों जब सत् की घाटी चढ़ करके, उस परमतत्व से मिलने के लिए सब कुछ दे दिया, और आनन्द की अवस्था में गया। यह हालत है महासुन्न की। उसमें आनन्द ही आनन्द है।

'तीन छोड़ चौथे को धारे,
सो सब का आधारा।'

सत् चित् आनन्द से भी परे, जब उस अवस्था

को पहुंचे, गथा जिसमें तीनों मिले हुए हैं, तीनों जिससे निकते हैं. जो सर्वाधार है, उस अवस्था को पाना ही चौथा पद है।

'द्वंद जगत् त्रिपुटी की त्रिकुटा,
छोड़ चला घरबारा ।
नहीं तू दो नहि तीन-चार है,
नहीं तू सहस हजारा ।'

महाराज जी ने कहा न ! सहस्रदल कमल, विचारों की अनेकत, इनसे दूर चले गए । उसके बाद त्रिकुटी में तीन हो गए । फिर त्रिगुणात्मक त्रिकुटी है। ज्ञाता-ज्ञेय-ज्ञान, भक्त-भक्ति भगवान् ब्रह्मा-विष्णु-शिव, न तू तीन हैं, न तू चार है, न तू मन-चित-बुद्धि और अहंकार है।

'एक-एक है एक-एक है,
जाने जाननहारा ।'

यह भी अनुभव है। एक का अनुभव, सम दृष्टि का अनुभव है। जब यह अनुभव हो गया कि यह जितने भी भेद-भाव हैं, इन सबके अन्दर एक ही परमतत्त्व है, इसलिए समदृष्टि हो गयो। समदृष्टि को ही एक जगह दाता दयाल जी ने कहा है :

'कौन है शादी यहां,

शादां फकत जाते फकीर।
खुश नहीं हरगिज तवंगर,
मालोज़र वाले अमीर।
तर्के दुनिया तर्के उकबा,
तर्फे मौला कर दिया।
तर्क का भी तर्क है,
इस तर्क से दिल भर गया।'

मालिक के प्यार में सब चीजों को छोड़ते गए, छोड़ते गए। दुनिया को छोड़ा, सबको छोड़ा और फिर ईश्वर को भी छोड़ा। फिर एकत्व का भाव आ गया।

'चश्मे वहदत भी मिली,
बहदत का मंजर देख कर।
कर रहा हूं रात दिन,
दुनिया की मंज़िल का सफर।'

चश्मे वहदत भी एक की अवस्था है :

'एक एक है, एकएक है,
जानें जाननहारा।
फकीरा रू तरा,
अति प्यारा।'

यह समदृष्टि की अवस्था भी वही जानता है जिसने अनुभव किया है। और जब वह अनुभव होता है, तब आदमी उस में ही रहने लग जाता है। उसका व्यवहार

बदल जाता है। यह एकत्व का अनुभव मैंने कई दफा आपको बताया कि एक झटके से होता है और जब एक झटके से एकत्व की अवस्था आ जाती है तो यह सब मिनिस्टर; चीफ मिनिस्टर आदि कठपुतली जैसे लगते हैं। सबके पीछे एक ही शक्ति काम कर रही है। फिर छोटा-बड़ा, अमीर-गरीब, सब के साथ स्वभावतः एक जैसा व्यवहार होता है। विषमता के पीछे समता और अनेकत्व के पीछे एकत्व का आभास होता है। भेद भाव का कोई सवाल ही नहीं।

(क्रमशः)

तीन मौन

परम संत परम दयाल
पंडित फकीर चन्द जी महाराज

गताँक अंक से आगे

1. माया, तरवर, विविध का,
दुःख, सुख और सन्ताप,
सीतलता सपन नहीं,
फल फीका तन ताप ।

2. कबीर जग को क्या कहूं,
भव जल बूड़े दास,
सत नाम पद छोड़ कर,
करे मनुष्य की आस।

परम सन्त कबीर साहिब)

दूर-दूर क्यों जाते हो ? अपनी ओर अपने पड़ोस में रहने धनाढ्य पुरुषों की ओर जरा ध्यान दो। स्वयं ही समझ जाओगे। धन इसलिए है कि उससे आवश्यकता पूरी की जाए, न कि उसे अपना गला फंसाने की ज़ंजीर बनाया जाय। ये बहुत बड़ी घाटियां हैं जिन में गिर कर मनुष्य कुत्ते की मौत मरता है और जीवन के वास्तविक उद्देश्य से हाथ धो बैठता है।

इन दोनों इच्छाओं से मुक्त हो कर तब इस राह में पांव रखने की चिन्ता करो। जब तक यह इच्छायें मन में स्थित है तब तक वास्तविकता का गर्द कभी न उठेगा और न सच्चाई का पता चलेगा।

इन को काबू में लाने की विधि यही है कि तीन इच्छाओं को काबू तथा संयम में लाया जाय। यह नहीं कहा जाता कि कोई व्यक्ति अन्धा बन जाय, आंखों को फोड़ ले, कानों में सिक्का भर ले और जीभ को कटा ले। पहले इस बात को मस्तिष्क में बिठाने की आवश्यकता है कि हम इस संसार में केवल इन तीनों इन्द्रियों के कारण फंसे है। ये मुख्य हैं, दूसरी इन्द्रियां गौण है। वे न तो इतनी दुःखदाई हैं और न बाहरी प्रभावों में इतना मन को प्रभावित करती रहती हैं बल्कि उन्हीं के कारण उनमें भी गति आती है। आंख देखकर कान सुनकर, जिह्वा बोल कर मन के लिए भड़काने कर, सामान पैदा करते हैं। ये मन के बाहर निकलने और

बाहर की ओर से मन के अन्दर बाहरी प्रभाव प्रवेश करने के शक्तिशाली औजार है। इनको इस ढंग से ट्रेनिंग होनी चाहिए कि ये बहकने न पायें। ये न बहकेंगे तो मन भी न बहकेगा। संस्कृत में इनके कन्ट्रोल में रखने को दम कहते हैं। दम का अर्थ हैं वश में करना। इन्हें वश में कर लो मन में शान्ति आ जायेगी। मन को शान्ति को संस्कृत में राम बोलते है। यूं समझो कि मन एक प्रकार का तालाब है और ये तीनों इन्द्रियां उसके छिद्र हैं जिनका मूंह बाहर की ओर खुला हुआ है। इन छिद्रों से बाहर की आयु उसके अन्दर लगती है और मन के तालाब के ख्याली पानी में हलकोरे उठने लगते हैं। यही हलकोरे, वृत्तियां कहलाती है और अवसर पाकर बाहर की ओर दोड़ती हैं। यदि छिद्र बन्द हों जायें तो फिर यह अवस्था न हो। न मन इतना चंचल हो और न बाहरी प्रभाव उस पर आक्रमण ही करने पायें। और जब उसमें चंचलता न होगी तो स्वयं शान्ति आ जायेगी और शान्ति आने के साथ ही उसमें वास्तविकता का आभास होना आरम्भ होगा। और जब यह हुआ तो यह पार्थिव नहीं रहेगा बल्कि आसमानी बन जायेगा और इसके आसमानी बनते ही हकीकत का परदा उठ जायेगा। और जब हकीकत का पर्दा उठ गया तब क्या होगा? जीवन मृत्यु के कठिन प्रश्न हमेशा के लिए सुलझ जायेंगे और मनुष्य को जन्म मरण के दुःखों और संसार के तीन ताप से मुक्ति मिल जायेगी। दुःखों से सदा के लिए मोक्ष प्राप्त करना ही परम पुरुषार्थ और जीवन का सर्वोच्च उद्देश्य है। यही निर्वाण है, यही कैवल्य है, यही परम पद है। हमने थोड़े शब्दों में इसकी व्याख्या कर दी है। इसको अधिक

नहीं बढ़ाया।

परन्तु प्रश्न उठता है कि तीन बन्द कैसे लगाये जायें ? बहिर्मुखी होना मन को आदत पड़ गई है। उसे बाहर के जगत् में रस मिलता है। वह रसिया है। कोई रसिया रस की चाट को यूं कैसे छोड़ने लगा। कहने को तो जो चाहे रात दिन बातें बनाया करे परन्तु पता उस समय चलता है जब मन को वश में लाने का प्रश्न उठता है। ज्ञानी ज्ञान के कथन में मग्न है, मन अपनी आदत के अनुसार इन्द्रियों के विषयों की ओर ले गया। ध्यानी ध्यान लगाने बैठा, मन में बिषय की तरंगें उठने लगीं। कहा का ध्यान कैसा ज्ञान ! सब धरे का धरा रह गया। यह एक साधारण सी बात है जिसे साधारण बुद्धि वाला व्यक्ति भी समझ सकता है। इसलिए पहले इस मन को समझा-बुझा कर तब इसे काम की तरफ लगाना चाहिए।

बात बनाई जग ठगियो,
मन प्रबोध्यो नाहीं।
कबीर यह मन ले गया,
लाख चौरासी माहीं।

(परम सन्त कबीर साहिब)

न दम हुआ, न शम हुआ, परिश्रम व्यर्थ गया। ज्ञानी जिन्होंने योग का साधन नहीं किया ब्रह्म-ब्रह्म चिल्लाते रहते हैं। कोई कोई ख्याली मस्ती के नशे में थोड़ी देर के लिए

चूर भी हो जाते हैं। परन्तु इनका भी अन्त वही होता है और मन किसी समय ऐसा धक्का दे बैठता है कि ये नाच उठते हैं और किसी के सम्भाले नहीं सम्भलते।

1. अलमस्त फिरे क्या होत है
सुरत लीजिए धोय।
चतुराई नहीं छूटसी,
सूरत शब्द में पोय।

2. चतुराई क्या कीजिये,
जो नहीं शब्द समाय।
कोटिन गुण सूआ पढ़े,
अन्त बिलाई खाय।

(परम सन्त कबीर साहब)

लो बात-बात में विधि भी बता दी गई। सुरत शब्द योग का अभ्यास करो। आँख, कान और जिह्वा को बाहद की ओर से बन्द करो। पहले उन्हें अन्दर की ओर खोलो। यहां मन को आन्तरिक आनन्द मिलेगा। यदि वह रसिया है तो अन्दर प्रवेश हो और रस ले। रोकता कौन है? अन्दर तो और भी बढ़िया रस है। बाहर की ओर से इन्द्रियों के दरवाजे बन्द और अन्दर की ओर खुल गए। आंख अन्दर का नूर देखती है। कान अन्दर के शब्द (कलाम) सुनते हैं। जिह्वा अन्दर का नाम जपती है। तीनों के लिए तीन काम मिल गए। अब तो मानेगा या अब भी नहीं?

इधर से हटे, उधर को लगे। आहा-हा! क्या आध्यात्मिक दृश्य दिखाई दे रहे हैं। कैसा आनन्ददायक खेल है! साथ ही कैसे सुहावने बाजे बज रहे हैं कि मन खुशी से उछल उठता है। और फिर किस चैन और आनन्द के साथ अजपा जाप हो रहा है। आत्मा सनसनाती हुई ऊपर को ओर उठी, आसमान पर जा पहुंचा। और हकीकत यह है कि आकाश को पाँव तले दबा लिया और फरिश्तों तथा रूहों के मण्डलों को सैर कराती हुई ऊपर को चली।

दर दुखन्त अजब तमाशाए,
आसमान जेरो अरज बालाए।

(हजूर स्वामी जी महाराज)

सहजे ही धुन होत है
हम धम घट के माही।
सुरत शब्द मेला भया,
मुख की हाजत नाहीं।

(परम संत कबीर साहिब)

जरा इसे कर तो देखो, फिर पीछे कहना। यह गप्प नहीं और न ही अचेतन अवस्था की बात-चीत है। साधु, सन्त, वली, नबी सब ही ऐसा कर रहे हैं। सूफी, मालिक इस बात में सभी एक राय रखते हैं, और हम भी सुनी

सुनाई बातों से सम्बन्ध नहीं रखते बल्कि अपना अनुभव तुम्हारे सामने पेश कर रहे लेकिन जब तक स्वयं आप करके न देखो, तुम्हें विश्वास कैसे आए।

"कर्ता उस्ताद न कर्ता शागिर्द"

एक अनुभवी सूफी का कथन है :

एक फारसी के दोहे का अर्थ यूं है :

सरू और चम्बेली की सैर की लालसा में तू अपने ऊपर अत्याचार कर रहा है, मन के कपाट को खोल, बग में आ जा, तू स्वयं फूल से कम नहीं। शुष्क और बिना गन्ध के कस्तूरी को थैली की खोज में परिश्रम न कर। उसकी जुल्फ (बालों की लट की गिरह के ख्याल में बल खाता हुआ (दिल के) अन्दर में आ जा।

तुम पूछोगे क्या यह सच्च है? हम कहते हैं हां, यह सब है। तुम स्वप्न में क्या क्या तमाशे देखते हो। वे तुम्हारे अन्दर ही तो होते हैं? तुम उस समय बाहर कब जाते हो! हां उस अवस्था में मनुष्य विवश या बे अख्तियार होता है। हम तुम्हें कहते हैं कि अभ्यास द्वारा तुम अपनी मर्जी से चले जाओ और वहां के दृश्यों से मन को प्रसन्न करो। अधिकार और अनधिकार में वही अन्तर है जो कैद व स्वतन्त्रता के बीच में है और फिर कौन जाने अनधिकारी तुम्हें कहां ले जा रहा है। अधिकार वाले बनो, अन्दर की ओर धंसो। जाग्रत में स्वप्न का और स्वप्न में जाग्रत का तमाशा देखो।

जब जरा ऊपर को ओर चलोगे, दूसरी आवाज़ सुनाई देगी जो तुम्हारा स्वागत करेगी और तुम खुशी-खुशी उसको और चलोगे।

एक फारसी कवी ने इस सम्बन्ध में लिखा है, जिसका भाव यूं है :

परमात्मा के (महफ़िल) दरबार का देवता हर समय यह आवाज देता है कि आदर-मान की तनहाई (अकेले पन, खाली मकान) में ऐसे दरवाजे से होकर आओ जिससे फिर बाहर जाना असम्भव हो। यह हमने तुम से पहले कह दिया है कि इस श्रेय मार्ग में जो आया वह वापिस नहीं जाता और न उसे जन्म मरण का खटका हो रहता है। हां आने, घुसने तथा प्रवेश करने की शर्त है।

अधिकारी प्रश्न करता है कि जब अन्तर में तीन इन्द्रियां काम करने लग गईं तो फिर बन्द तथा मौन कैसा? हालत तो ज्यों की त्यों रही, केवल स्थान बदल गया। यह आपत्ति ठोक है। पहले तो अधिकारी को यह विश्वास करना आवश्यक है कि अन्दर में ये हालतें पैदा होती हैं। प्रमाण, अनुमान और शब्द तीन प्रकार के ज्ञान विश्व में होते हैं। प्रमाण तो इन्द्रियों का ज्ञान है। देखना, सुनना चखना आदि यह प्रमाण ज्ञान है। सोचना, अनुमान लगाना, परिणाम को देखकर कारण का ख्याल करना अनुमान कहलाता है। इसका सम्बन्ध मन से है। शब्द गुरु की शहादत

और आपत्ति पुरुष को वाणी है जो हर हालत में मानने के योग्य है। बाहरी जगत् में तो ज्ञान इस तरह प्राप्त होता है। आन्तरीय जगत् में इनके संस्कारों में कायम रहते हुए कुछ भिन्नता से काम करते है। अन्तर में बेशक और इन्द्रियों का अभाव तो नहीं रहता परन्तु तीन इन्द्रियां, आंख, कान तथा जिह्वा सब से जबरदस्त रहती है, वहां भी इनकी यही हालत रहती है जो यहां है। आंख, कान, ज़बान तीनों अपना काम करते हैं। आत्माओं के देश तथा दैव लोक में भी इन को प्रबलता रहती है। साथ ही मन अनुमान करता रहता है जो कि छठी इन्द्रिय है। अन्तर यह है कि कान यहाँ और शब्दों को भी सुनता है साथ ही उस शब्द को भी सुनता है जो गुरु या आपात पुरुष ने बताया है। आंख जहां और दृश्य देखती है साथ ही उस नूरानी दृश्य को भी देखती है जिसकी उमीद दिलाई गई है। ज़बान पूर्ण रूप से सिवाय अजपा जाप के किसी और वस्तु से सम्बन्ध नहीं रखती। धीरे धीरे इधर से खामोश हो जाती है। उधर केवल एक फर्ज [कर्त्तव्य] को पालती है और मन में लय हो जाती है। अब कान और आंख को सुनने तथा देखने के सम्बन्ध में बन्द लगाना शेष रहा। उन्हें सिवाय हिदायत की हुई हालत के और तरफ से बेखबरी में रहना पड़ता है। ज़बान बन्द है, आंख को दूर से दीपक की रोशनी दिखाई दे रही हैं।

[क्रमशः]

नारायणदास डोगरा
परमदयाल सर्वहितकारी मानवता मन्दिर,
फ़कीरधाम, सरड़ डोगरो, बरास्ता रक्कड़, ज़िला कांगड़ा,
हिमाचल प्रदेश

विशेष सूचना

प्रेमी सत्संगी जन को सूचित करते हर्ष हो रहा हैं कि हर वर्ष की भांति इस वर्ष भी मानवता मन्दिर, होशियारपुर के पवित्र प्रांगण में गुरु पूर्णिमा का पावन पर्व बड़े समारोह के साथ तारीख 12-7-95 को मनाया जाएगा। इस शुभ अवसर पर सरस पुरुष पूर्ण धनी सन्त सद्गुरु हिज़ होलीनेस हुजूर मानव दयाल डा. ईश्वर चन्द्र शर्मा जी महाराज अपने परा आध्यात्मिक सत्संग की अमृत वर्षा फरमावेंगे। मानवता धर्म के सभी आचार्य और महात्मा जन इस पुनीत अवसर पर अपने अनुभव-सम्पन्न प्रवचन करेंगे।

सभी प्रेमी सत्संगी जन इस सुनहरे शुभ अवसर से लाभ उठा कर अपना लौकिक-पारलौकिक जीवन सफल करने के लिए सादर आमंत्रित हैं।

गुरु पूजन 12.7.95 प्रातः 7 बजे से 8 बजे तक
सत्संग प्रातः 8 , 11 बजे तक
सायं 4 , 6 बजे तक

टिप्पणी : बाहर से आ वाने सज्जनों के लिए ठहरने व लंगर का प्रबन्ध होगा।

जनरल सेक्रेटरी।
मानवता मन्दिर, होशियारपुर।

Manav Mandir

ENGLISH SECTION

A Paper devoted to the Social, Cultural and Spiritual Welfare and Uplift of Mankind all over the World.

BE MAN

Saturday, 10th June, 1995

MANAVTA MANDIR

Hoshiarpur (Pb.) India

Listening to the Sound current within

Data Dayal Maharishi Shibvrat Lal Varman Ji Maharaj

Says the August Radhasoami :

'The sound (word) is the prime cause of all. It is verily the end also of all. The three regions and the fourth were created by it. Word and Spirit, they are alike and these form the essence of the Nameless One. The sound or word is the cause, it is the effect as well. All were born of it. The sound is the Master or proceptor, it is the disciple also. It reverberates into the recesses of the heart of every one. Sound is water and fish is sound. Kabir speaks of this principle. Nanak and Tulsi repeat the same. The King and the minister, both are sound (personified). Radhasoami says. My brave sons Listen to

it."

There are two kinds of sounds that echo and re-echo in the regions of creation, one is the spiritual sound, the other is the mental and material sound. The tendency of the former is inward, while that of the latter is outward. One is attractive, the other is repulsive. In spirit lies the energy, and matter and mind, with its association come to life and manifest themselves in the external plane, The spirit; therefore, is the central force. An example should make the statement a little clear. Take the case of a lighted lamp. The true energy is somewhere in the centre. And when the lamp burns, it throws the dark and grey layers outside. These dark and grey substances represent the mind and matter stuff, while the white light underlying these, may be likened upto the spirit. The examples and illustrations often are misleading and therefore they should not be taken Too liberally. They are symbilic, helping to understand concepts.

The sound currents pertake of the energy of the regions concerned. They are in a way a part and parcel of the same in manifestation and produce the same effect. Daily experiencs of the worldly affairs throw some light on it. A man of sympathetic mind

gives relief and consolation to a suffering friend. A kind word spoken takes away the burden of misery to which one is a victim, A look too, has the same effect. We are charmed and fascinated with the utterances of a clever and eloquent speaker for unconsiously his mind is associated within with the region which is centre of these qualifications. Words spoken at rendom often blast the very prospects of a listener's ife. They cut at the heart. His mind feels wounped as it were and the cases of many a juvenile suicide can be attributed to the taunting word of the relations and kinsmen, who reprimanded them. The words of a spiriteal Teacher produce effect of a contrary and opposite character. They heal the wounded mind and the lacerated heart. A man gives up his worldly relations and follows the path chalked out by his Master, who has a sympathetic attitude towards him. Many a King's sons heard the counsel of Saints and became anchorites. Words have power to cause anger and inflame the furnace of passions. They can also heal, reform and resurrect.

When a man, with the means of his utterances is capable to do such things in the mundane affairs of daily life,

you can very easily imagine the capability of the spi t centres within, which contain an ext aor linary amonnt of various sorts of energy.

When the devotee has undergone a training of repeating the Holy Name and meditating on the Form within, he is taught to listen to the Sound currents proceeding or rather emanating from these centers. They will draw him inside and he will rece ve flashes of kn owledge. There is nothing so powerful as these soun s. The reverberation of musical instruments does wonder. It absorbs you at once. You become quite unconscious of what passes around and live as it were in a condition of oblivion. If such is the effect of external music, what will be that of the heavenly music internal ?

The mind in us wants always to be doing something and when it attaches itself with the objects it cherishes, he feels amused and happy. A game of chess has nothing in it, but the attachment of the attention with it. gives pleasure. All plays and entertainments and sports that are so many pastimes, owe their charm to this law. It is very difficult to divert The mind, which from infancy has fallen into the share

of pernicious habit of seeking pleasure outwardly, and it shall ever persist in doing so, unless you give it something superior to be amused with. People knowingly tread upon tha quicksands which result in hurt full falls. The volcano of destruction may be beneath their feet, but they ca-e not for it. They are apt to do, what they have been habituelly doing so long no matter if it brings about the derangement and disorder. To cure of this destructive habit is to let the mind apply itself to the beautiful, harmonious, sweet sounds within. If it finds better pleasure, it may not go astray and make proper adjustment in time. 'Seeing is believing," and when it finds out the truth, instead of making leaps into cesspools of irreligiousness and externalisation, it will easily tread the path of happiness and become heir to the kingdom of God. The prectice of listening to the sound current is sure to lead to such beneficial results.

It has been alluded to above, that this sound principle is the creator of the world as will be explained in full, in some other chapter. At this stage it be sufficient to know, that, in this world also, we are not ignorant of the doings and of various phenomena in the changes of lives, that are brought by its agency. It makes and unmakes a thing.

If we daily practise it, the law of association will not only make us different from what our environments have made us, but we shall feel contented and easily continue our progress from one stage to another and shall eventually find final rest in the original Home of Spirit which is all bliss, all knowledge and all energy.

★★

The donation to the Faqir Library Charitable Trust [Regd.) Sutehri Road, Hoshiarpur is exempted Under Section 80 G. of the Income-Tax Act 1961 vide the Commissioner Income-Tax Jalandhar Letter No. JUDL./TRUST/1-F/3264 Dated 19-7-94 upto year ending 31-3-1999.

A few words about the Practice of the Yoga

Data Dayal Maharishi Shibvrat Lal Varman Ji Maharaj

This mode of devotion is technically called the Surt-Shabd Yoga. Surt means attention, which is the manifestation of Spirit current and Shabd is Sound, that vibrates in all the nerve centres. In its English translation will be "the Yoga of concentrating upon the Sound principle." In this system of Yoga, the practice beging from the last ganglion, between the eyebrows · the others below it are left out and not attended to, for they are regarded as more shadowy reflections of the centres in the cosmos. There was a time, when students commenced practising from the first ganglion i.e. the rectum. But the Saints fegard

them as useless now, so thelast centre of the series is to be considered as first in this respect.

When an aspirant has undergone the ceremony of initiation, which is binding, he is t ught to carry on the practice in a secluded place, where there is no fear of disturbance to derange his mind. Let the place be as clean as possible. If no such place be accessible, he can begin to practice it in his own room. This should be regarded as a temple of God. Talks of profane nature should never be indulged in, in that quarter no vicious thoughts of rancorous jealousy, avarice or usefulness are to be entertained therein. Admittance should ever be sought in it with pious and reverent mind. For what we do, what we think and what we speak of leave their impressions in the Ether (Akas of the abods and if no care is taken to avoid them, they will exert their undesirable influence on the devotees mind, rendering his mind perverse and restive, making him incapable of attending to the devotion. The words uttered, the thoughts cherished, the deeds done, are not lost, they are always reflected on the subtle layers of ether encircling the spot where they are done and effect the mind invariably. As much as possible, effort should be made to overcome all unbecoming, unholy thoughts, words, deeds

and snggestions. This regimen/discipline is to be strictly observed for a few days only. When the habit is changed, all will be right.

The devotion prescribed is to be performed in the begining twice, for half an hour, at least every morning and evening. The best time would be before meals. No dafinite rule, however is to be imposed. All depends upon the convenience of the devotee. Some persons are in the habit of practising it during night time, when it is calm and quiet.

When the habit is acquired, thoughtful devotee gets accustomed to do it, even in the midst of a busy life. The course of his life then, is entirely changed. He becomes a different man altogether. The more he advances towards subtle regions, the subtler his senses become, and he feels conscious of his progress.

The room i.e. the place of devotion need not be adorned with pictures of any ene, except these of Holy personalities. These to are not void of their

influences.

Animal diet is strictly prohibited. Use of meet fish and eggs and all sorts of intoxicants and alcoholic liquors are to be done away with. For, they make the mind coarse and produce excitements, which are not most undesirable.

The particular posture is taught to the intitiate on the first day, but no emphasis is laid on this point' the one that suits him, is to be recommended, and he himself can be the best judge ot it,

The praliminary made of devotion is to be practised for a month or two, after which the higher mode is to be resorted to. Unlike other systems of Yoga, this method is does not cause any damage to brain or physical body. Man, woman, old and young, all can do it, with ease and with perfect assurance. It is a system, properly speaking, of doing and seeing and a few months practice will itself reveal to him the advantages flowing from the increase of vital energy and erhancement of spirituality of high order.

There are some pitfalls and dangers, however, which should be pointed out here. The devotee may fa l asleep during his worship. . This results in inertia and laziness. Many persons, who are ignorant of the Yoga, think this condition to be that of the Samadhii. It is a mistake. The Samadhi is the condition of super-consciousness which gives an insight into the realm of Truth. Another point to be kept in mind is the particular sound currents which are only attended do. Every sort of sound currents, reverberate in the system and if the devotee is led to listen to them, he may be led astray, and loss his balance. All such things are howevet communicated to him by the preceptor. Mention has been made of some sounds, in the Yoga treatises of Yogacharya,an ancient branch of Mahayan Budhistic system (Vide the voice of silence compiled by Madame Blavatsky) and other schools also, that belong to Sufism, Oriental Mysticism etc. Some of these pertain to the sounds of lower order. But as we reject them outright, the follower of the Religion of the Saints is warned to keep himself all of from them. These currents now and then thrust themselves upon his attention. He should take care to avoide them altogether, or they may prove a

sort of impediment in his way and progress. They may have been of some benefit, if the practice had been commenced from lowerganglia, but as we exelude them altogether from our curriculum of training, they are to be scrupulously avoided and eschewed.

SAT SANATAN DHARMA

OR

SAT MANAV DHARMA

Param Sant Param Dayal Pandit
Faqir Chand Ji Maharaj

samskara

The question is, who manifests itself to them. O' man ! It is your own mind. You are swayed by the whirlwind or the whirlpool of your own mind. If you want to be happy in this world, exercise control over your mind, because your world is formed by the thoughts arising in your mind. Your longings formulate your world. This is the conclusion drawn by the Saints as well as laid down by Sanatan Dharma.

The best and easiest method to control the mind is to divert it from the wrong direction and to direct it to right direction which is constructive and consists of good deeds. Change its direction from bad to good good and from negative to positive. It entirely depends upon your will whether you change its direction with the aid of Ram Nama, Krishan Nama, Wahe Guru, Allaha, Radhaswami or Panch-Nama. The motive is to canalize your mental faculties in a useful and fruitful direction. It should not be allowed to indulge in diseased imaginations or to think absued and meaningless thoughts. Your mind should not dissipate its energy. Tha propouncer of every religion has advocated his own method of Sumiran and Dhyan. There is nothing wrong with it. Goopness and badness lie in your thoughts. So change your houghts. I am an advocate of the Radhaswami faith. I do not deny it, but I do not impress upon you that you should become the followers of my faith. The only point to be noted is that whether the man or the Guru, who ini iates you or tells you the art of controlling the mind, has got full control over his own mind or not ? If his own mind is not under complete control his instruction will not help you at all.

You must have heard or read about the story

of a lady who went to a Mahatma with her son, and said. 'Maharaj, this child eats Brown Sugar too much.' The Mahatma asked her to come with the child after a fortnight. As directed, the lady again visited the Mahatma after two weeks. The Mahatma positively advised the child saying, "Dear child, do not eat Brown Sugar." The chiled promised that he would not. The lady questioned the Mahatma as to why did he not advise the child thus on her first visit ? The Mahatma said that at that time he himself used to eat Brown Sugar very fondly. Suppose, I am a Mahatma, and I have an intention to visit Ujjain, get a big shamiana erected there and then collect one or two thousand rupees for my Manavta Mandir. Then if I prease to you, do you know, what will my preaching convey to you ? My real intention of amassing wealth shall influence you, and not my preaching. To procreate or to initiate involves the same responsibility. Do not forget the writings of our scriptures, where it is written, that the sins of the rubjdct tells upon the king. The sins of the children tell upon the parents. Similarly the responsihility of the mis-deeds and ignorance of the followers fall upon the Guru. It is because of this, thar I do not initiate anybody. I simply give Sat Sang. I do not claim to be a Guru, because Guru is the name of Dispeller of Darkness, and Giver of Know.

ledge, of power of discrimination, Power of faith, of correct understanding, and of belief. This carpo. real frame of mine has never been a Guru. I only explain to you the teachings of the Gurus. My preceptor, Hazur Data Dayal Maharishi Shiv Brat Lal Ji who assigned me this work, writes about the Guru :

"The Guru is the Beginning,
the Middle, the Boundless ; Wonderful
Unique, Pure, Profound, Unperceived,
All pervading, Finite, Infinite ;
Perceptible, Impercedtible, True,
Lord of the world, Invisible. Unattainable,
Pure, Essence of Thought, He is,
He, who surrenders himself or His feet,
Stands emancipated from this illusive world."

His Holiness explains that Guru is the name of the Pure and True thought. Now, What is this Pure and True thought ? It is 'Shiva Sankalpamastu". It is to have control over one's mind, word and deed. This is the teaching of Sanatan Dharma. The first requisite of Sanatan Dharma is devotion to Guru.

The first Guru is mother, next, father is the Guru, then sister is a Guru, brother is a also Guru, at school the teacher is also a Guru and lastly, the Sat Guru is the Spiritual Guru. The last is Supreme amongst all, because he initiates the devotee into the Reality—the Truth, Now the question is, what sort of Guru should initiate the aspirant ? He should not; direct all in the same direction without studying their nature. Just as an able Physician, prescribes only a particular medicine for a particular disease, similarly, a Guru adopts different methods of initiation for different followers. One method cannot be applied to all. Every individua has his own nature, his own circumstances, Sanskaras of his own parents and his own particular problems. Sat Guru is he. who studies all these aspects of the individual before initiating a disciple.

'Guru is Vishnu's image, Shiva's form
Know Him as Brahma,
Guru is Brahm, Guru is Par-Brahm ;
Know and ascept the Guru in this
light'.

Guru instructs. What instruction have we received ? Our parents preached to us and our lives are

moulded according to their thoughts and Sanskaras. Then our associates and our company influenced us. Later, we went to the Sat Guru, who instructed us to lead a life of mental and physical continency. Similarly Sanatan Dharma asks us to remain celibute upto 25 years of age. These are the tanets, of the Sanatan Dharma, not mine. Our unhappy and disturbed life is 90% due to early marriage, indulgence in sex and due to bad sanskaras of our early age. All the persons, who complain about their unhappy life, are the victims of wrong sanskaras at a tenred age, and their own over indulgence in sex, both mental and physical. My own life is an example. I was married at an early age of 18 years. I entered the material life at the age of 15 and indurged in it, as if it was a delicious pudding. Consequently, I was a viction of an unhappy and disturbed life. I was ignorant about this Truth at time. Hazur Data Dayal Ji very wisely sent me to Pasra Bagdad during the 1st World War. I lived there a lonely and devoted life for 12 years, which helped me to regain my mental and physical celibacy. I achieved—happiness, contentment and lived a life of a bliss. I had no child at that time. When I returned, Hazur Data Dayal Ji advised me,

'Faqir Chand, Stop Sadhana, Beget children', I reached home and again over indulged in sexual life. I forgot to beget children but indulged in it just for enjoyment. The result was that I was again deprived of my happiness and bliss. This is my personal experience, which I marrate to put you on the right path of life.

Sat Sangis of different stages and ages come to me. A very old lady comes to me. She practices inward Sadhana, Put still complains about mental unrest. I could not understand the reason. I asked her when was she married ? She said, 'at the age of 9 years. 'When did you become a mother' ? I further asked. She replied, 'I was only 13 or 14 years old when I begot my first child, Now you ask yourself whether or not such an individual should suffer from mental unrest as wastes his or her vital power at such a tender age. Inconstancies of our mind are very powerful, and the reason is that we have discarded the Path laid down by Sanatan Dharma. Neither we procreate according to the tenets of Sanatan Dharma nor do we ourselves follow them. We may claim to be Sanatanists by the beat of drum, but the fact is otherwise. We

cannot become Sanatnists simply by applying Tilak on our foreheads.

Sanatan Dharma is our Ancient way of Life. We have fallen down from our ideals by not following the Path laid down by our sages of the past. Whatever I say, is based upon my own experiences. I give you an example. In 1944 A.D., a double M-A., who was an England returned Professor, visited me at my residence. He was quite robust. He said to me, 'Pandit Ji, I have no peace in my life.'' I said, 'You are a libertine' He felt much annoyed and said to me, 'You tell a lie'. I said, 'How' He said, 'I married at the age of 25 years. I swear I did not touch any lady till that age and also did not waste my vital power by any means. How do you say that I am a liberite" ? I asked him to tell me the thoughts he used to entertain during his school life. He said to me,'I used to do only one thing. I had about 40 50 photographs of girls in semi-naked on waked poses. I used to see them daily for about half an hour and enjoy.' I said, 'You have entertained your mind with the photographs of sex for about 10-12 years and now you should concentrate upon such a man whom you consider, is not sex obsessed. Only then you shall have peace'. Thes are instances out of my life,

that I am disclosing you. If mentaliy and phsically you do not exercise self control, you may touch my feet for a hundred thousand times, or worship any number of Gurus, you shall not get peace, Many of you sit ing here are young men. If you want to listen to the sermons of Gita, go to some religious centre. There are many such centres where such trade is carried on for utterly selfish ends. But I Trade in Truth and speak from my practical life.

Once, a close friend of mine came to me, and said, 'Maharaj, my son has failed in the 9th class'. I expressed my sympathy with him. He again said, 'he is a great devotee'. Whom does he worship'? I enquired. 'He has a small room in the house where he daily sings for an hour or two with the help of cymbals,' he explained, I said, 'Your son is im moral.' He was my fellow-disciple and said to me. 'Are you in your senses'? I said, 'Wait and see'. He asked for a proof. I told him to go home and tell his son. 'Baba Faqir is a great Saint and fulfils all desires'. After this he went away. I was station Master at Faridkot. When I got up from my Samadhi in the morning, that boy was sitting in front of me. He wept and said, 'Baba Ji, there is a girl of another caste. I have fallen in love with her for a year or so. Though

I have not spoilt myself, yet I am very much infatuated and remain mentally disturbed. I laughed and assuring him not to worry, I said to him, "Your father wants to see you as a Doctor. You become a Doctor I will arrange your marriage with that very girl". I gave him this word and sent him home. I sent for his father and told him everything. When he enquild into it he found it 100% correct. O ! Young boys and girls who are sitting here, you are my beloved children, I warn you that if you do not try to have physical and mental celibacy, you will be exploited either by Doctors or by Sadhus and Mahatmas.

Sat Sang was going on at the residence of Master Mohan Lal at Hoshiarpur. Five yellow-robed ascetics come to attend my Satsang. They came to my home after the Sat Sang. All the five prostrated themselves at my feet. I stood up and said, 'O Saints ! why are you heaping sins over my head ? I am a householder. I have all regards and respects for you'. They said in unison, 'Maharaj, this is not the matter. We have been attending the Sat Sang of a Lt. Colonel at Dehra Dun. He was an ascetic. Once he said in his Sat Sang that he had visited many places, but found none so true and spiritual as Baba Faqir Ji. He had heard about you from him. We came to Hoshiarpur to attend your Sat Sang. We

have advised sanskaras, like sanskara of conception, sanskar of baptism, sanskara of wearing the sacred thread and of maintaining physical and mental celibacy. This is Sanatan Dharma.

What is Karma-Dharma? Marriage. In modern times for marriage we look to money and fashionable looks of the girl. Her Virtues, character and the sanskaras (nature) are totally neglected. The best seed cannot flourish if the land is barren. For better production you shall have to use better manure and fertiliser. Similarly, if the merits, qualities and natures of both the boy and the girl are not [illegible] married life cannot be smooth [illegible] love marriage

What are we to do to control our mind ? First of all we should remain obedient to our Guru Un- less this mind is put under the control of some one and made obedient to him, it shall continue to wander freely. So the greatest principle of Sanatan Dharma is discipline. In the ancient times the princes used to stand in the court of their father, and never speak till they were asked to speak. They knew good manners. Our society was based on certain principles of behaviour, and etiquette. Uufortunately that age discipline is gone Parents have no love and ction for their children, and the children have no air parents. What wonder if our nation ave totally forgotten our Sanatan

Even the learned are mis.ed in this m ze
M[illegible] alone created the fourteen Lokas
[illegible]nts with properties
[illegible]ages are [illegible]rlds[illegible]d successful. Now-
[illegible]stu lied, their
s[illegible] has destroyed the world. To m[illegible] ming
only 3 to 4 % love marriages are suecessful. The
rest are without love. Dharma means our Duty.
We do not do our duty. Numerous religious sects
claim to be the repositories or carriers of our acient
culture without understanding its importance. Sanatan
Dharma is the only true guide for a happy and pros.
perous life. Its teachings should be adopted in
every walk of life.

How ca[illegible]
Since the impe[illegible]
Does Exc[illegible]
One should recite it and th[illegible]

Then be at peace, having understoo[illegible]
working of
This is the Truth that Rabir doth

O ! Sat Sangis, I regard all tho
who take me to be their Guru. W
you have guided me like a Guru to

T
ve
my
this
work

Ganesh one of my devotees has visions of my visage. He sees me in his visions. And the truth is that I don't go anywhere within anybody, nor am I aware of such manifestations. By such reports at these, I felt compelled to do some introspection on my own visions which I too used to have of my Guru Huzoor Data Dayal Ji, The statements of my devotees regarding my manifestations have proved to me the truth that all such visions and manifestations are all false, deceptive and nothing but an illusion. It is the creations of one's own mind. I wanted to get rid of this cycle of birth and death. My path is that of Nirvana (emancipation), I am a follower of Sant Mat. I do this work simply to reap the fruit of my own past deeds and to obey the commands of Hazur Data Dayal Ji. Your experiences have helped me to realise the Eternal Nama, which is far beyond the mind, colour, scenes and illusion. This world is created by Maya and desire. Now by the Grace of my Guru and my devotees, I live above desires and beyond the clutches of Maya. When I was ignorant of this truth, I used to trouble my Guru Maharaj Ji excessively for the attainment of my emancipation. For own liberation, His holiness entrusted me with duty. Data Dayll Ji asked me to carry on the of initiation and Sat Sang and said, 'Do not think

that you will liberate anybody, but you will have a glimpse of The Sat Guru Radhaswami Dayal in the form of hour Sat Sangis'. Truly all my doubts have now vanished with your experiences. I have been enabled to go beyond the illusion of the mind, but the worldly people do not want to go beyond the kingdom of mind.

You are worldy people, if you want to make your life happy, follow the canons of Sanatan Dharma i.e. entertain virtuous thoughts, Divert your mind towards good thoughts. But the same rule cannot be applied to all. Every individual has his own nature. A man of mercurial mind cannot be asked to sit for meditation for two hours, because he cannot do it. He is fit for dynamic action. Give him work to do. By doing his work, he will reach a state of desirelessness and his mind shall become tranquil. There is no universal method or prth to be adopted by all. Guru alone knows what to prescribes for whom.

CONTINUED

Nectar Of The

Bhagavadgita

Introduction to the Twelve Discourse

[Chapter XII of Bhagavad Gita)

By

His Holiness Param Sant Manav Dayal

Dr. I.C. Sharma Ji Maharaj

He is forgiving, impartial, free,
Practising justice constantly ;
In pleasure and pain he's undisturbed,
His revengeful spirit is always curbed.
Such a man is self contained
Since highest Yoga he has attained ;
Self disciplined, determined, still
With his mind, intellect and will
All with love resigned to Me ;
He is dear to Me through enternity.

(15)

That devotee dear to Me
By whom no living entity
Can ever be harmed or hurt,
Who is not under emotional spur
When others seem to cause him harm
He does to equanimity conform
In pleasure and in severe pain,
Such peace of mind does he attain

[16]

That devotee is to Me too dear
Who for ambition does not care,
He is efficient and pure of mind
Since worries all, he has resigned ;
One who from egoistic sense is free,
He is no doubt too dear to Me.

[17]

One who is not over elated
When success is unabated ;
One who is not by failure shaken
And free from worry and ambition,
One who is from good and evil free

Such lover of Mine is dear to Me.

(18)

One who is alike to foe and friend
Who does fame ill fame transcend,
One who is the same in pain and pleasure
In heat and cold everywhere
In short one who is from longing free
Is no doubt too dear to Me.

(19)

One for whom praise and blame huve died.
Who is silent and satisfied
With every one in worldly strife,
One who has devoted balanced life,
With firm faith in love divine
Is the dearest friend of Mine.

(20)

All those who have extreme devotion
To me as thc ground of all motion,
And as the Soul of all beyond,

Of all such persons I am fond ;
Being firm minded to Me inclined
They are always to Me resigned ;
Such devotees of Mine are really free
And hence the dearest ones to Me.

NECTAR OF THE BHAGAVADGITA

THIRTEENTH DISCOURSE

The Science of the Field and the Subject

(Kshetra--Kshetrajna

(Chapter XIII of Gita

by

H. H. MANAV DAYAL DR. I. C. SHARMA JI MAHARAJ

As already stated there are four Yogas propounded by Lord Krishna in his eighteen Discourses of the Bhagavadgita. These Yogas correspond to the fourfold nature of man as an integrated whole of body, mind, intellect and soul or Self.

2. The Buddhi Yoga which exactly is the Yoga of integrated or harmonious personality corresponds to spiritual nature of man. The Jnana

Yoga, or the Path of Intuitive knowledge, is conducive to the intellectual nature of man. The Jnana Yoga, or the Path of Intuitive Knowledge, is conducive to the intellectual nature of man. The Bhakti Yoga or the Path of Love, brings about the elevation of the mental nature of man. The Karma Yoga or the Path of Action, leads to the perfection of man by activating and evolving his physical nature. It should, however, be noted that all rhe four aspects of man are not separated or absolutely segregated from one another.

3, The first Six Discourses expound Buddhi Yoga which actually is Surat-Shabda Yoga of the Saints.

Seventh and eighth discourses are purely the epplication of Jnana Yoga, the Path of Intuitive Knowledge. Ninth to twelfth Discourses expound Bhakti Yoga, or the Path of Devotion. The last six Discourses beginning from the thirteenth provide the ground for Karma Yoga or the Path of Action.

4. As mentioned above, the Path of Action is not isolated from the other three Paths. The thirteenth

Discourse is designated as the knowledge of Kshe. trajna and Kshetra, the subject and the object the knower and the known,the purusha i.e. Self and Prakriti which should be translated as conscio sness or Universal Mind and Matter or Space respectively,

5, This Discourse is self explanatory. My translation of the original text into English verses is simple, direct and uncontaminated. I am sure that the readers would have no difficulty in understanding the imporr of this Discourse.

6. It may, howevr. be added that when a person understands the difference betwcen the subject and object, or God and Nature, them whatever action or duty he performs would lead him to attain spiritual perfection. This is evident from the concluding verse of this Discourse which runs as follows

'Those who know the difference great
Between the subjective and objective state

Which has been called as God and Nature
Or spiritual and material stature :
And also through the eye of wisdom
Know the path to spiritual freedom
Such souls pure and truly great
Do attain God Ultimate."

Nectar of The bhagavad Gita

THIRTEENTH DISCOURSE (Chapter XIII)

BY

H. H. Manav Dayal Dr. I. C. Sharma Ji Maharaj

[1]

O you the son of mother Kunti !
Field is that which is our body ;
Knower of the field is subject indeed
Which is the doer, but not the deed.

[2]

O you Arjuna ! know this to be true
That of all the cosmos I am knower too ;
Real knowledge is that of the subject in field.

Which does the highest enlightenment yield.

(3)

Now listen to Me in brief today
What is the subject object way
What is this object or field great ;
All its effects will I state
What are its effects and those of the knowe.
I will expiain this with sincere endeazour.

[4]

The knowledge of the two has been variously
explained
By the sages in the Vedas, it has been
retained ;
It has also been sung in versification,
Brahm Sutra has given it explanation
With analysis and arguments complete
Which are with logical style replete.

[5, 6]

Earth, air, ether, fire, water
Intellect and egoistic nature
Five sense organs and organs of action
Combined with dynamic invisible motion

Desire. jealousy. pleasure and pain,
Physical body which does these feelings
contain,

Together to you that concept yield
Which we have called the cosmic field ;
All these qualities and their manifestation
Are the field of material creation.

[7,11[

Freedom from pride and selfconceit,
Non violence toward all, and forbearance,
Combined with simplicity without deceit;
Service of teacher with love, and tolerance,
Purity of conscience, body and mind,
With the control of all these combined ;
Non attachment to sensuous things;
Freedom from ego which trouble brings ;
Consideration again and again
Of the sufferings and the pain
That birth. sicknes, old age and death entail;

राधास्वामी नाम-ध्वनि

राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी ।
अलख अगम और अनामी ।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी ।
परम सन्त का रूप धरा, जीवो पर उपकार किया।।
सीधा सच्चा मार्ग दिया, आये धुर पद धामो।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी।।
बन कर आये परम फ़कीर, हरने सब जीवों की पीर।
परम दयालु दानी वीर, नाम दान के दानी ।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी ।।
राम भी हो और कृष्ण भी तुम ।
तुम महावीर और बुद्ध गौतम ।
अक्षर ब्रह्म और पुरुषोत्तम, सब नामों में अनामी ।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी ।।
मानवता का किया प्रचार, निज अनुभव का दे दिया सार
ऐसे गुरु जो को बारम्बार, नमामि नमामि नमामि ।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी ।।
दाता दयाल के प्यारे तुम, मानव के रखवारे तुम ।
निर्गुण और सगुण भी तुम, सब के अन्तर्यामी ।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी ।।

BOOK POST

Regd No. 26265/74 JUNE 10th 1995

MANAV MANDIR PB HSP—5

Address

2662. Sh. K. Lxmaiah, H/E
Finance Deptt. F.C.I. Ltd.
P.O. Fertilizer City,
Distt. Karimnagar (A.P.)

MANAVATA MANDIR
SUTEHRI ROAD PHONE : 22639
HOSHIARPUR 146001

Shiv Dev Rao press Manavta Mandir Hoshiarpur (pb.)